Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुत्व के पंच प्राण

सावरकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

168026

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुत्व के पंच प्राण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास एवं ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित प्रकाशन

तेजपाल सिंह धामा की रचनाएं

गुरु गोबिन्द सिंह
महारानी दुर्गावती
रानी अवन्तीबाई एवं 1857 की क्रान्ति
शेरे पंजाब महाराजा रणजीत सिंह
हमारी विरासत — अर्थात दिव्य भारत का गौरवशाली इतिहास
मनुर्भव — अर्थात् विजयी विश्व हिन्दुत्व हमारा
अजेय अग्नि — अर्थात महारानी कर्मदेवी की शौर्यगाथा
अग्नि की लपटें — अर्थात महारानी पदमिनी की बलीदान गाथा
पृथ्वीराज चौहान एक पराजित विजेता
अखण्ड आर्यवर्त — अर्थात चन्द्रगुप्त चाणक्य कथा
पंक से पंकज — अर्थात महर्षि वाल्मिकी कथामृत
नल नील अभियान "श्री राम सेतु निर्माण"
गौ का गोरव — गॉय का विश्वकोप

वीर सावरकर साहित्य

हिन्दुत्व के पंच प्राण
हिन्दुत्व
क्रान्ति के नक्षत्र
मोपला — मोपला विद्रोह कथा
गोमांतक — पुर्तगालीयों द्वारा गोमांतक (गोवा) भूमि पर जघन्य अत्याचार की कथा
प्रतिशोध — मरहटों द्वारा पानीपत पराजय के प्रतिशोध पर आधारित
अमर सेनानी सावरकर — शिवकुमार गोयल
महामना सावरकर — हरि बाबू देसाई

बलराज मधोक की रचनाएं

पाकिस्तान का आदि और अंत
कश्मीर जीत में हार
कश्मीर जीत या हार
जिन्दगी का सफर लद्दाख से दिल्ली
जिन्दगी का सफर स्वतन्त्र भारत की राजनीति का संक्रमण काल
जिन्दगी का सफर दीनदयाल उपाध्याय की हत्या से इन्दिरा की हत्या तक
पंजाब समस्या और समाधान
भारत और संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुत्व के पंच प्राण

(निवन्ध-संग्रह)

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

लेखक
स्वातंत्र्यवीर
विनायक दामोदर सावरकर

081
168026

अनुवादक
विक्रमसिंह एम. ए.

Central Library
168026
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

हिन्दी साहित्य सदन
फोन : 23553624

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© सुरक्षित

R
089.9143
GWP-H

मूल्य Rs 80-

प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स , 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग पुलिस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-110005
ई–मेल indiabooks@rediffmail.com
hindisahityasadan@gmail.com
Website www.hindisahityasadan.com
Telephone 9213527666, 7065618655
संस्करण 2021
मुद्रक संजीव आफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

Hindutva Ke Panch Pran

By V.D. Savarkar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

हिन्दूराष्ट्रवाद के विभिन्न अंगों एवं पहलुओं का विस्तृत विवेचन करने वाले बृहदाकार ग्रन्थों की रचना वीरजी की प्रभावी लेखनी ने कर रखी है। इन ग्रन्थों के सर्जन के अतिरिक्त निबन्धों के रूप में प्रकाशित उनका साहित्य सम्भार भी विशाल है। समय-समय पर प्रचलित समस्याओं पर मर्मग्राही लेखों का लेखन वीरजी ने किया है और जागरूक तथा निर्भीक प्रकाशकों ने अपनी पत्र-पत्रिकाओं में उन्हें प्रकाशित भी किया है, जिससे वैचारिक आन्दोलन भी उत्पन्न हुए हैं। उसी लेखन में ये निबन्ध लिखे गये थे, जिन्होंने हिन्दूराष्ट्र के विभिन्न अंगों एवं पहलुओं पर प्रखर प्रकाश डाला है और एक ऐसा आन्दोलन उत्पन्न किया है कि जिसके परिणामस्वरूप जहाँ एक ओर हिन्दूराष्ट्र का स्वरूप बहुतांश में स्पष्ट हो जाने के कारण हिन्दू-राष्ट्रवाद को एक यथार्थवाद का रूप प्राप्त हुआ और प्राप्त हुए अनुयायी भी अपने ध्येयवाद के प्रति जागरूक एवं स्पष्ट धारणा रखने लगे, वहीं दूसरी ओर विरोधियों ने तथा शत्रुओं ने भी अपने-अपने मोर्चे बाँध लिये। और इस प्रकार राष्ट्रीय-स्वतन्त्रता-संग्राम में हिन्दूराष्ट्रवाद एक प्रखर प्रत्याशी की भाँति अपना स्थान पा सका।

वीरजी के अनगिनत निबन्धों के विभिन्न संकलन वर्तमान शताब्दि के पूर्वार्ध में मराठी भाषा में प्रकाशित हो चुके हैं, यह पुस्तक भी उन्हीं संकलनों में से एक है। हिन्दी-जगत् वीरजी के लेखन से पूर्व से ही परिचित है, उनके साहित्य का हिन्दी में अब पुनर्प्रकाशन हो रहा है, यह स्पष्ट प्रमाण है कि राष्ट्र की जनता उसके द्वारा हेतुतः दुर्लक्षित द्रष्टा का मूल्य विलम्ब से क्यों न हो—उनके निर्वाण के पश्चात् क्यों न हो, पर समझ गई है। इस प्रकार यह तो केवल पुनरारम्भ मात्र ही माना जा सकता है जो सुचिह्न भर निश्चिन्त है।

प्रस्तुत संकलन—"हिन्दुत्व के पंच प्राण" अपने शीर्षक को पूर्णतः सार्थक करता है। जिस प्रकार मानव के जीवित रहने हेतु पंच प्राणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवश्यकता को विवाद्य नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार राष्ट्र-जीवन के हेतु वीरजी द्वारा इन लेखों में प्रतिपादित तत्त्व भी विगत तीस-पैंतीस वर्षों के समय की अग्निपरीक्षा में प्रतप्त होकर, रसरूप होकर, शोधित हो जाने के कारण किसी भी प्रकार विवाद्य नहीं माने जा सकते। प्रस्तुत पुस्तक में संग्रहित वीरजी के नौ छोटे-बड़े लेख हिन्दूराष्ट्र का एवं उक्त हिन्दूराष्ट्र को प्रस्थापित करने की दिशा का साग्र परन्तु संक्षिप्त दर्शन है। "हिन्दुत्व के पंच प्राण" रूप में वर्णित इन एकादश लेखों में (अ) प्रथम लेख हिन्दुत्व की अकाट्य व्याख्या को संक्षेप में प्रस्तुत करता है। यह लेख हिन्दूराष्ट्रद्रष्टा वीरजी द्वारा लिखित हिन्दुत्व नामक राष्ट्रीय दर्शन ग्रन्थ का एक लघुरूप है—सारांश है। (आ) तृतीय, चतुर्थ, सप्तम्, अष्टम एवं दशम लेखों में प्रबल हिन्दूराष्ट्र के निर्माण हेतु हिन्दूसंगठनरूपी स्वराज्यसाधक साधन की अत्यावश्यकता का, संख्याबल की महत्ता का, न्याय तथा राष्ट्रहित की दृष्टि से अछूतोद्धार का, जन्मजात जातिभेद की समाप्ति का विश्लेषण कर साहसिक प्रतिपादन किया है। (इ) द्वितीय लेख में हिन्दी राष्ट्रभाषा के शुद्धत्व के विचार को प्रस्तुत कर हिन्दुस्थानी-भाषावाद के तर्कों को निराधार तथा राष्ट्रघातक सिद्ध किया है। (ई) षष्ठ लेख में हिन्दुओं की, धर्म-भ्रष्टता सम्बन्धी भ्रान्त धारणा तथा ईसाई एवं इस्लामियों द्वारा उससे उठाये जाने वाले अनुचित लाभ को संक्षेप में बताकर शुद्धि के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। (उ) तथा पंचम, नवम् एवं एकादश लेखों में अहिंसा के अत्यन्त विवादपूर्ण विषय के सम्बन्ध में अत्यन्तिक-अहिंसा एवं सापेक्ष-अहिंसा के अर्थों को समझाकर परिस्थितिवशात् शस्त्रप्रयोग की आवश्यकता का महत्त्व प्रतिपादित किया है, वैसे ही प्रतिघात, प्रतिशोध के सम्बन्ध में जीवमात्र में होने वाली प्रतिशोध-भावना का विवेचन कर, उसके लिए धर्म का आधार बताकर, स्वार्थ के लिए नहीं तो परमार्थ के लिए ही प्रतिशोध किस प्रकार आवश्यक है इस बात की विवेचना की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक में संकलित अधिकतर लेख १९३७ के पूर्व तब ही लिखे गये हैं एवं मराठी साप्ताहिक श्रद्धानन्द तथा मासिक पत्रिका सह्याद्रि आदि में प्रकाशित भी हो चुके हैं जब अन्दमान की भयंकर यातनाओं को सहने के पश्चात् महाराष्ट्र के रत्नागिरी नामक स्थान में वीरजी को स्थानबद्ध कर रखा गया था। १९३७ में कर्णावती (अहमदाबाद) में सम्पन्न अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के १९वें वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता वीरजी ने की और धार्मिक, सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में विशेषरूप से तथा राजनीतिक क्षेत्र में साधारणरूप से कार्यरत हिन्दू महासभा को प्रकट एवं प्रभावी रूप से राजनीति के प्रांगण में उपस्थित कर समय की अति तीव्र माँग को पूर्ण किया उसके लिए बना हुआ सैद्धान्तिक-आधार 'हिन्दुत्व के पंच प्राण' यही था। इस प्रकार वीरजी के प्रवेश से हिन्दू महासभा का मानो कायाकल्प ही हुआ। क्योंकि, अपनी प्रखर प्रज्ञा, प्रभावी प्रस्तुतीकरण, प्रबोधक प्रवदन आदि के माध्यम से अपने प्रगल्भ, प्रगमनशील हिन्दूराष्ट्रवाद का एवं उसके निर्माण हेतु प्रभावी हिन्दूसंगठन के प्रगहण का; संख्याबल के प्रबलीकरण का...जातिभेद, आत्यन्तिक अहिंसा आदि के प्रवज्यन का; धर्मभ्रष्ट एवं राष्ट्रभाषा की शुद्धि के प्रवर्तन का; तथा प्रधर्षक के प्रतिहरण हेतु प्रतिघात के—प्रतिशोध के साग्र दर्शन का अमृत-प्रसाद हिन्दू महासभा को वीरजी से सदा ही प्राप्त होता रहा।

वीरजी में जहाँ एक ओर साहित्य-सागर के निर्माण एवं विस्तार की कीमिया थी वहीं दूसरी ओर उस सागर को गागर में भरने की माया भी उन्हें सिद्ध थी इस वास्तविकता का अनुभव इस पुस्तक के पठन से पाठकों को अवश्य ही आयेगा ऐसा हमें विश्वास है। इस विश्वास के साथ ही इस आशा को रखते हुए कि हिन्दूराष्ट्र के उक्त पंच प्राणों का पठन-मनन कर हिन्दूराष्ट्र को वर्धिष्णु एवं विजयिष्णु बनाने का संकल्प यह हिन्दू समाज करेगा, हम प्रस्तुत प्राक्कथन को पूर्ण करते हैं।

—विक्रम सिंह एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रमणिका

हिन्दुत्व की परिभाषा एवं हिन्दू शब्द का सत्प्रयोग
तथा अपप्रयोग ९

हमारी राष्ट्रभाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी !
हिन्दुस्थानी नहीं ! उर्दू तो कदापि नहीं !! २५

कहो—छूऊँगा ? स्वीकार करूँगा ?? कहो—छूऊँगा ? ४५

संख्याबल भी एक शक्ति ही है !! ५२

ऐसा न समझो कि प्रतिघात का साहस हिन्दुओं में नहीं है ! ६८

धर्म का स्थान हृदय है, पेट नहीं ! ७१

ऐ खड्ग, तेरी विजय हो ! ८२

जन्मजात जाति-भेद नष्ट करना माने क्या करना ? (पूर्वार्द्ध) ९०

प्रतिशोध का दर्शन १२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुत्व की परिभाषा एवं हिन्दू शब्द का सत्प्रयोग तथा अपप्रयोग

आसिंधुसिंधुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै 'हिन्दु' रिति स्मृतः ।।

'हिन्दू' शब्द हिन्दू संगठन का प्रमुख आधार है, अतएव इस 'हिन्दू' शब्द का अर्थ जिस प्रमाण में व्यापक या संकुचित, दृढ़ या ढीला, चिरन्तन या चंचल होगा उसी प्रमाण में उस आधार पर निर्मित हिन्दू-संगठन की यह प्रचंड बनावट भी व्यापक, भरकम तथा स्थायी होने वाली है। हिन्दू महासभा क्या तथा उसने उठाया हुआ हिन्दू संगठन का महान् कार्य क्या, जब तक वह 'हिन्दू किसे कहा जाय ?' इस प्रश्न का निश्चित उत्तर नहीं देता तब तक उसका एक पग भी दिशाभ्रम के बिना आगे बढ़ना असम्भव होगा, अनर्थकारी होगा।

एतदर्थ, जिन-जिन लोगों ने हिन्दू संगठन का कार्य करने का व्रत लिया है उन सभी के उपयोग हेतु इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण 'हिन्दू' शब्द के सम्बन्ध में वह जानकारी सूत्ररूप में इस लेख में प्रस्तुत करने का हमारा उद्देश्य है जो हरारे विचार से प्रत्येक हिन्दू को कण्ठस्थ होना अत्यावश्यक है। उक्त प्रस्तुतीकरण के पूर्व ही हम पाठकों से निवेदन करना चाहेंगे कि उन सूत्रमय विधानों का स्पष्टीकरण एवं समर्थन इस संक्षिप्त लेख में करना असम्भव होने से, जिन्हें वह समर्थन एवं स्पष्टीकरण देखने की इच्छा हो वे हमारे 'हिन्दुत्व' नामक ग्रंथ में अवश्य देखें। इतना ही नहीं तो हम यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं कि उस मूल ग्रंथ का पठन किये बिना ही इस लेख के विधानों पर उतावलेपन से आक्षेप न करें, क्योंकि उक्त ग्रंथ के पठन से उन आक्षेपों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में से बहुत से आक्षेप अनायास ही दूर हो जाएँगे ऐसी हमारी धारणा है।

'हिन्दू' शब्द की प्राचीनता

(१) **हिन्दू शब्द की उत्पत्ति न तो मुसलमानों द्वारा हुई है न ही मुसलमानों ने प्राथमिक रूप से वह शब्द हमारे राष्ट्र के लिये सम्बोधित ही किया है**—जिस काल में 'हिन्दू' शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पर्याप्त गवेषणा ही नहीं हुई थी उस काल की यह दुष्ट दन्त-कथा भर है? 'हिन्दू' शब्द की ऐतिहासिक उत्पत्ति के निम्नलिखित स्पष्टीकरण से यह सिद्ध हो जाएगा।

(२) **हिन्दू, हिन्दुस्थान, हिन्द इन प्राकृत शब्दों का मूल उद्गम ऋग्वेदकालीन सप्तसिन्धु नामक हमारे अपने प्राचीनतम राष्ट्रीय अभिधा में ही है—**

हमारे वेदकालीन पूर्वजों ने ऋग्वेद में 'सप्तसिन्धवः' इस शब्द को देशवाचक एवं राष्ट्रवाचक अर्थों में ही, स्वतः की राष्ट्रीय अभिधा के रूप में, स्वतः के हेतु ही प्रयुक्त किया है।

उस प्राचीन काल में हमारे निकटस्थ ईरान, बाबिलोन, प्राचीन अरब आदि राष्ट्र हमें हमारे 'सप्तसिन्धु' इसी राष्ट्रीय अभिधा से जानते थे। 'पारसिकों ने' 'पारसियों ने' ढाई हज़ार वर्ष पूर्व के उनके धर्मग्रंथों में हमारे राष्ट्र को 'हप्तहिन्दू' से ही सम्बोधित किया है। तत्कालीन प्राचीन 'बेबोलियन' ग्रंथों में हमारे देश से निर्यातित झीने तथा सुन्दर वस्त्रों को 'सिन्धु' या 'सिन्धुव' कहा हुआ है।

अलेक्झण्डर के दो सौ वर्ष पूर्व का ग्रीक इतिहासकार हेकाटेआस भी हमारे प्राचीन राष्ट्र को हमारे ही सिन्धु शब्द के ग्रीक रूप Indu India इसी नाम से उल्लेख करता है। बुद्धकाल में हिन्दुस्थान में आये हुए 'चीनी' यात्री हुएन्त्सांग ने भी हमारे राष्ट्र को सिन्धु शब्द का चीनी अपभ्रंश 'शिन्दु' इसी अभिधा से सम्बोधित किया था। और तो और, मोहम्मद पैगम्बर के जन्म के पूर्व जब अरबी लोग शैव एवं शाक्त पन्थ सदृश धर्म के अनुयायी थे और जब मुसलमानी धर्म का पता ठिकाना भी अरबों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञात नहीं था तब दो 'हज़ार वर्ष पूर्व के एक अरब ग्रंथ में' हमारे राष्ट्र के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए हिन्द एवं हिन्दू इन नामों का गौरव से उच्चारण किया गया है। उदाहरण के लिए लबी बीने अखतब बीने तुर्की की निम्नांकित पंक्तियों को देखिये—

अया मुबारकल अर्जे या शैयेनोहा मिनल हिंदे ।।
वा अरा दक्कला हो मईयो नज्जेला जिकतुन ।।
व हल्ल तज्जली यतुन ऐनक सहबि अरब अतुन जिक्रा ।।
व हाजे हियोन लज्जेलुर रसूला मिनजा अनल 'हिन्दजुन' ।।

दूसरा अरब कवि, अरबों के मुसलमान धर्म पूर्व का अभिमानी उमर बीने हाशिम अबुल हकम, महादेवजी-शंकरजी की स्तुतिवाचक कविता में लिखता है—

व अह लोलहा अजरु अरमीमन 'महादेउ' व मनाजेता इल मुददीने मिनहुम व सेयतरू ।।१।। म अस्सेर अखलका न असानन कल्ल हुम यन हुवा नजू मुन अजाअत सुम्मा गाबुल 'हिन्दु' ।।२।। व सहबी कया माफिल मका मिल 'हिन्दे' यौमना यकूलूना लात हज्ज न फइन्नकतो वज्जरू ।।३।।

भविष्य पुराण का आधार

इस प्रकार हमारे सिन्धुतटीय वेदकालीन राष्ट्र की हमारी स्वतः की 'सप्तसिन्धु' यह जो अभिधा थी उसी से ही हप्तहिन्दु, हिन्दु, शिन्दु, सिन्धु, Indus ये हमारी प्राचीन विशिष्ट संज्ञाएं हमें प्राप्त हुई। उच्चारण भिन्न है पर मूल शब्द सप्तसिन्धु यही है। उसका एक प्रमाण जो आज भी यथावत् है यह है कि सिन्धुतटीय हमारे राष्ट्र के एक प्रदेश को हमारा स्वतः का प्राचीनतम 'सिन्धुदेश' यह नाम अभी भी यथावत् ही रहा हुआ है।

(३) हिन्दू, हिन्दुस्थान आदि प्राकृत रूप हमारे सप्तसिन्धु, सिन्धु, सिन्धुस्थान इन संस्कृत एवं स्वकीय तथा प्राचीन अभिधाओं के ही प्राकृत रूप हैं, यह बात हमारे प्राचीन पंडितवर्ग को भी ज्ञात थी। उन नामों को वर्तमान में बादरायण सम्बन्ध से जोड़ा नहीं गया है। इसे स्पष्ट करने वाले भविष्यपुराण के निम्नलिखित उल्लेख जितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनन्दनीय हैं उतने ही उद्बोधक भी हैं। 'सप्तसिन्धु' का ही प्राकृत रूप 'हप्तहिन्दु' है यह बात उक्त पुराण के निम्नलिखित श्लोकों में वर्णित है—

जानुस्थाने जैनुशब्दः सप्तसिन्धुस्तथैव च ।। हप्तहिन्दुर्यावनीति पुनर्ज्ञेया गुरूण्डिका ।।१।।

शालिवाहन कुल के राजाओं की कथाओं का वर्णन करते हुए वह पुराण आगे कहता है—

जित्वा शकान् दुराधर्षान् चीनतार्तरिदेशजान् ।। बाल्हीकान् कामरूपाश्च रोमजान् खुरजान् शठान् ।। तेषां कोशान्गृहीत्वा च दंडयोग्यानकारयत् ।। 'स्थापिता तेनमर्यादा म्लेच्छार्याणाम् पृथक्पृथक् ।। सिन्धुस्थानमिति प्राह् राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम् ।। म्लेच्छस्थानं परम् सिन्धोः कृतं महात्मना ।।' —भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व, अ, २

भावार्थ—बाल्हीक, चीन, तार्तारादि म्लेच्छ शत्रुओं का समूल नाश करने के उपरान्त उस भूपति ने सिन्ध को अपने उत्तम आर्य-राष्ट्र की सीमा निश्चित किया। सिन्धु के इस ओर का जो प्रदेश है वह हमारा सिन्धुस्थान एवं उस ओर का जो प्रदेश है वह म्लेच्छस्थान है, ऐसा सीमांकन किया, अटक उल्लंघन के निषेध का नियम भी इसी समय में प्रचलित हुआ। 'नागन्तव्य त्वया भूप पैशाचे देशधूर्तके' इस भविष्यपुराण के श्लोक में भी सिन्धु उल्लंघन का बन्धन उद्धृत है।

इस प्रकार उधर उस सिन्धुसरिता का एवं इधर इस सिन्धु-सागर का उल्लंघन न करें। उनका उल्लंघन करते ही विदेशगमन का निषिद्ध कृत्य हो जाता है। सिन्धुबन्धन की हजार वर्ष पुरानी यह शास्त्राज्ञा भी दर्शाती है कि, उस प्राचीन काल से ही हमारे इस हिन्दु-स्थान की मर्यादा 'आसिन्धुसिन्धुपर्यंता' यही मानी जाती थी।

(४) सप्तसिन्धु, सिन्धुदेश, सिन्धुस्थान आदि शब्दों का 'हिन्दु' यह प्राकृत रूप भी हमारे ही प्रकृतीकरण के नियम के अनुरूप हमारे प्राकृत में रूढ़ हो गया—संस्कृत शब्दों के 'स' का हमारे प्राकृत में 'ह'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकल्प होता है। मारवाड़ी आदि बोलियों में इसके उदाहरण प्रचुरता से दिखाई देते हैं। जैसे केसरी का केहरी, सप्ताह का हप्ता, सत्तर का हत्तर, दश का दहा आदि, अस्मि, असि, स्मः आदि के प्राकृत रूप इसी के उदाहरण हैं। हमारी प्राकृत के समान ही प्राचीन पारसी भाषा भी संस्कृत की ही एक प्राकृत भाषा होने के कारण उसके कई रूप हमारे समान ही बने हुए दिखाई देते हैं। परन्तु केवल इसी आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वे रूप इधर से आये हैं या इसी आधार पर उन्हें विदेशी भी नहीं माना जा सकता। चन्दभाटपूर्व की हिन्दी की जो पुरानी से पुरानी कविता आज मानी जाती है उसमें भी हिन्दुस्थान शब्द का गौरवयुक्त प्रयोग किया गया है।

अटल थाट महिपाट अटल तारा गढ़ थानम् ॥
अटल नगर अजमेर अटल 'हिंदव-अस्थानम्' ॥१॥

'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के समकालीन चन्दभाट के काव्य में तो हमारे इस राष्ट्र के 'हिन्दू' इस अभिधान को अत्यन्त गर्व से हमारा समूचा राष्ट्र मानो सिर पर उठाकर नाच रहा था। यह दृश्य प्रत्येक पृष्ठ पर दिखाई देता है। हिन्दुत्वाभिमान से भरपूर ये पंक्तियाँ देखिये—

धनि (धन्य) हिन्दु पृथिराज! जिने रजवट्ट उजारिय॥ धनि हिंदु पृथिराज! बोल कलिमझ्झ उगारिय ॥१॥ धनि हिंदु पृथिराज! जेन सुविहानह संध्यो॥ बारबारह गृहिमुक्की अंतकाल सरबंध्यो ॥२॥ आज भाग चहुवान धर आज भाग हिंदवान ॥ इन जीवित दिल्लीश्वर गंज न सक्कै आन ॥३॥

'हिन्दू' शब्द पूर्ण रूप से राष्ट्रीय है

इस काल के उपरान्त की जो स्थिति थी उसे तो बताने की भी कोई आवश्यकता नहीं। आर्यावर्त, भारत आदि समस्त अभिधाओं से भी अधिक प्रमाण में 'हिन्दू' एवं 'हिन्दुस्थान' ये शब्द ही हमारे राष्ट्र एवं राष्ट्रीय जीवन के मूर्धाभिषिक्त आदर्श, अभिमान एवं अभिधान बन बैठे। प्रासाद से लेकर पर्णकुटी तक 'मैं हिन्दू हूँ' यह भावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिप्लुत होने लगी। मैं ग्रार्य हूँ, मैं भारतीय हूँ इस स्वतः की स्थिति से ग्रनभिज्ञ होने वाले लाखों लोग मिल सकते थे पर मैं 'हिन्दू' हूँ यह भावना झोंपड़ी-झोंपड़ी में करोड़ों लोगों में जम चुकी थी। उधर पंजाब में श्री गुरुगोविन्दसिंहजी का जो जीवित कार्य था वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार वर्णित है—सकल जगत में खालसा पन्थ जागे ।। जगे धर्म 'हिन्दू' सकल भंड भाजे ।। इधर महाराष्ट्र के समर्थ रामदास जी को जो पीड़ा थी वह भी यही कि 'या भूमंडलाचे ठायी। 'हिन्दू' ऐसा उरला नाहीं ।।'—इस भूलोक में मानो 'हिन्दू' तो बचा ही नहीं। तेगबहादुर के समान हजारों हुतात्माग्रों ने 'हिन्दू शब्द का परित्याग करो, नहीं तो प्राणत्याग हेतु तत्पर हो जाग्रो!' ऐसी शत्रु की धोंस पर प्राण त्याग दिये, पर इस 'हिन्दू' शब्द का परित्याग नही किया। ग्रटक से लेकर रामेश्वर तक के लाखों वीर पुरुष इस 'हिन्दुत्व' के सम्मान हेतु पीढ़ियों से युद्धों में जूझते रहे, झगड़ते रहे, खेत रहे। पर ग्रन्ततोगत्वा ग्रहिन्दुग्रों की एक-एक पादशाही पैरों तले रौंदकर जब उन्होंने हिन्दुपदपादशाही की स्थापना की ग्रौर फिर समस्त राष्ट्र में विजयदुन्दुभी से जो घोषणा की वह यही कि, 'बुडाला ग्रौरांया पापी' 'हिन्दुस्थान' बलावले ।। ग्रभक्तांचा क्षयो झाला ग्रानन्दवनभूवनीं ।।'—पापी ग्रौरंगज़ेब का सर्वनाश होकर हिन्दुस्थान सशक्त हो गया है, ग्रौर इस ग्रानन्दकानन पृथ्वी पर से अभक्तों का ग्रन्त हो चुका है।

(५) उपर्युक्त वर्णित हिन्दू शब्द के इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह हिन्दू शब्द मूलतः तथा मुख्यतः देशवाचक एवं राष्ट्र-वाचक है, किसी विशिष्ट धर्ममत भर का ही निदर्शक नहीं है—मूल रूप में सप्तसिन्धु यह वेदकालीन शब्द ही उस देश का तथा उसमें निवास करने वाले राष्ट्र का प्रमुख रूप से द्योतक था। हमारे उस ग्रोर के एक प्रदेश का सिन्धु देश यह नाम भी प्रमुखतः दैशिक एवं राष्ट्रीय ही है। विदेशियों ने हमारा वही नाम, उसी अर्थ में हमारे लिए प्रयुक्त किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुत्व कोई धर्ममत नहीं है

जिस प्रकार वेद नामक धर्मग्रन्थ के कारण उसके अनुयायियों को वैदिक, बुद्ध नाम पर उसके धार्मिक अनुयायियों को बौद्ध, जिन मतानुयायियों को जैन—गुरु नानकजी के धर्मशिष्यों को सिक्ख, विष्णु देवता के उपासकों को वैष्णव, लिंगपूजकों को लिंगायत ये नाम प्राप्त होते हैं, वैसे हिन्दू यह नाम किसी भी धर्मग्रन्थ से या धर्म-संस्थापक से या धर्ममत से प्रमुखतः या मूलतः निर्मित नहीं हुआ है। वह तो आसिन्धुसिन्धु प्रसृत देश का एवं उसमें निवास करने वाले राष्ट्र का ही प्रमुख रूप से निर्देश करता है और फिर 'इसी सन्दर्भ' में उसकी धर्म संस्कृति का भी।

एतदर्थ ही हिन्दू शब्द की परिभाषा को केवल किसी धर्मग्रन्थ से या धर्ममत से बन्धित करने वाले प्रयास दिशा भ्रम उत्पन्न करने वाले हैं। हिन्दू शब्द की परिभाषा का मूल ऐतिहासिक आधार आसिन्धु सिन्धु भारत भूमिका ही होना चाहिए। वह देश तथा 'उसमें उत्पन्न धर्म' एवं संस्कृति के बन्धनों से अनुप्राणित राष्ट्र, ये ही हिन्दुत्व के दो प्रमुख घटक हैं। अतएव हिन्दुत्व के इतिहास से यथा-सम्भव सम्बन्धित होने वाली परिभाषा इसी प्रकार की होगी कि, "यह आसिन्धु सिन्धु भारत भूमिका, जिसकी पितृभू एवं पुण्यभू है, वही हिन्दू है।"

उपर्युक्त परिभाषा में प्रयुक्त 'पितृभू' एवं 'पुण्यभू' इन शब्दों का उसी प्रकार थोड़ा-सा पारिभाषिक अर्थ है जिस प्रकार प्रत्येक परिभाषा में प्रयुक्त शब्दों का होता है।

'पितृभू' अर्थात् केवल वह भूमि नहीं जहाँ अपने माता-पिता का जन्म हुआ हो, 'पितृभू' तो उस भूमि को कहा जाता है कि जिसमें प्राचीन काल से एक परम्परा से हमारे पूर्वज निवास करते आये हैं। इस कथन पर कुछ लोगों द्वारा त्वरित ही यह शंका उठायी जाती है कि, 'चूंकि गत दो पीढ़ियों से हम अफ्रीका में रहते आये हैं, तो क्या फिर हम हिन्दू नहीं? पर उनके इसी तर्क के कारण उनकी यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशंका सतही सिद्ध होती है। भविष्य में समस्त पृथ्वी पर भी यदि हिन्दू अपनी बस्तियाँ स्थापित करें तो भी उसकी प्राचीन परम्परागत, जातीय एवं राष्ट्रीय पूर्वजों की पितृभू यह भारत-भूमि ही होगी।

'पुण्यभू' का अर्थ आंग्ल भाषा में Holy land इस शब्द के अर्थ से है। जिस भूमि में किसी धर्म का संस्थापक, ऋषि, अवतार या प्रेषित (पैगम्बर) प्रकट हुआ, उसने उस धर्म को उपदेश दिया, उसके निवास से उस भूमि को धर्म क्षेत्र का पुण्यत्व प्राप्त हुआ, वह उस धर्म की पुण्यभू है। जिस अर्थ में ज्यू या ईसाइयों की पेलेस्टाइन, मुसलमानों की अरेबिया पितृभू है उसी अर्थ में हमने पुण्यभू शब्द का प्रयोग किया है, केवल पुण्यभू इस अर्थ में नहीं।

पितृभू एवं पुण्यभू शब्दों के इन पारिभाषिक अर्थों में यह आसिन्धु-सिन्धु भारत-भूमिका जिस-जिस व्यक्ति की पितृभूमि या पुण्य-भूमि है वह प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है।

हिन्दुत्व की यह परिभाषा जितनी ऐतिहासिक है उतनी ही वर्तमान स्थिति के अनुसार भी है। वह जितनी सत्य है उतनी ही इष्ट भी है। जितनी व्यापक है उतनी ही व्यावर्तक भी है।

भ्रान्ति का मूल

हिन्दुत्व की प्रस्तुत परिभाषा यदि प्रारम्भ में ही उपलब्ध हो जाती तो सिक्ख, जैन इतना ही नहीं तो आर्यसमाजी भी, जो स्वयं को हिन्दू कहलाने में कभी-कभी हिचकिचाते रहे, उनके हिचकिचाने की स्थिति ही उत्पन्न नहीं होती। आंग्ल शासन के पूर्व अपने सारे पन्थ उपपन्थों को एवं धर्म संघों को हिन्दुत्व की कक्षा में ही एकरूप होना पड़ा था—और सम्भवतया उसी अभिधान को स्वतः का अत्यन्त गौरवमयी कुलभूषण इस रूप में हमारा सारा राष्ट्र गर्व से घोषित करता आया है। इनेगिने अपवादों को यदि छोड़ दें तो, मुसलमानों के परधर्मद्वेष ने, उनके अनजाने से क्यों न हो पर अपना सारा हिन्दुराष्ट्र एकरूप करने में, समस्त हिन्दुओं में हिन्दुत्व की भावना कूट-कूटकर भरके उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकरूप करने में बहुत बड़ी सहायता की है। मुसलमान राजसत्ता ने स्वतः की सुविधा हेतु, धर्मान्धता के नशे में हिन्दुस्थान के करोड़ों लोगों को हिन्दू एवं मुसलमान इन दो टुकड़ों में बाँट दिया—इस प्रकार जो भी व्यक्ति मुसलमान नहीं था वह हिन्दू माना जाने लगा। यह थी उनकी उद्दण्ड परिभाषा।—पर अनायास ही वह ठीक सिद्ध होती गई, 'हमारे लिए' हितकारक हुई, क्योंकि उसी कारण से (अपवादों को छोड़कर) जो मुसलमान नहीं थे वे सबके सब हिन्दुत्व के ध्वज के नीचे आकर संगठित हुए। परन्तु, आंग्ल शासनकाल से, बहुसंख्यत्व के कारण भारी बने इस हिन्दू राष्ट्र के संगठित, एकरूप गुट में जिस भी पद्धति से विघटन हो सके ऐसे प्रयास विपक्षियों द्वारा हेतुतः किये जाने लगे, अतएव तबसे ही 'हिन्दू किसे कहा जाये' इसकी परिभाषा निश्चित करने के प्रयास भी हमारे जननायकों को हेतुतः ही करने पड़े। उस समय दुर्दैव से प्रारम्भ में ही एक महान् दिशाभ्रम हुआ और वह यह कि हिन्दू शब्द का सम्बन्ध केवल हिन्दू धर्म से ही जोड़ा जाकर, 'हिन्दुत्व की व्याख्या न करते हुए, हम हिन्दू धर्म की व्याख्या करने लगे।' हिन्दुत्व की सर्वांगीण व्याख्या राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक आधार पर न करने के कारण उसके उन प्रमुख अंगों की ओर दुर्लक्ष्य होकर, प्रत्येक विचारक उसकी धार्मिक परिभाषा को प्रतिपादित करने लगा और हिन्दू समाज के बहुसंख्यक लोग आज भी वेदानुयायी ही होने से वह परिभाषा सहज ही ऐसी बनी कि 'जो वेदानुयायी है वही हिन्दू है'। इतना ही नहीं तो, बहुजनसमाज में मूर्तिपूजा, शिखा-धारण, गोपूजन आदि हिन्दुओं के जो अनेक आधार हैं, उनमें से जिसे जो भी पसन्द हो, वही हिन्दू धर्म की विशेषता है, ऐसा मानते हुए, जो भी व्यक्ति उनका पालन करेगा वह हिन्दू है ऐसी अनेक की अनेक परिभाषाएँ सामने आई हैं। परिणामस्वरूप वह धर्मग्रन्थ, धर्म-मत न मानने वाले पर पूर्वकाल से हिन्दूराष्ट्र के अंगस्वरूप होने वाले एक-एक भाग उस परिभाषा के कारण ही हिन्दुत्व की कक्षा के बाहर जाने लगे। 'मूलतः हिन्दुत्व यह हिन्दुओं में प्रचलित किसी भी धर्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत से व्यापकतर होने से' उसे बहुसंख्यकों के धर्ममत से समानार्थक मानते ही अल्पसंख्यकों को वह हिन्दू शब्द अप्रिय एवं अनिष्ट भी प्रतीत होने लगा।

विपक्षी अपने दाँव में सफल कैसे हुए ?

श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त सनातन धर्म को मानने वाला व्यक्ति हिन्दू है ऐसी यदि 'हिन्दू' शब्द की कोई परिभाषा बनाता तो, स्मृतिपुराणादि को पूर्ण रूप में न मानने वाले या पूर्णतः न मानने वाले आर्यसमाजी आदि केवल वैदिक, उस 'हिन्दू' शब्द का परित्याग करना चाहते, अच्छा ? यदि केवल वेदान्त को ही प्रमाण मानने वाला जो है वह 'हिन्दू' है ऐसी परिभाषा दी जाती तो आर्यसमाजी आदि वैदिक भर उससे हिन्दू कहलाते, पर उसी कारण से, जैन, सिक्ख, बौद्ध आदि वेदप्रमाण न मानने वाले परन्तु हिन्दू राष्ट्र के एकरक्त के सगे भाई 'तो फिर हम हिन्दू हैं ही नहीं' कहकर निषेध करते ? सिक्ख, जैन, बौद्ध, आर्यसमाज, ब्रह्मोसमाज, देवसमाज आदि अनेकानेक धर्म या पन्थ कभी-कभी हिन्दू शब्द का जो विरोध करते थे—स्वतः हिन्दू नहीं होने की जो बात करते थे, उसका प्रमुख कारण यही था कि हिन्दुत्व की परिभाषा को धार्मिक दृष्टिकोण से ही बनाने की भ्रान्ति हमने की। हिन्दुत्व तथा हिन्दू धर्म इन दो शब्दों को एक ही माना गया। इस फूट के प्रमुख कारणों में विपक्षियों के राजकीय षड्यन्त्रों की जोड़ हुई। परिणाम यह हुआ कि जब तक हिन्दू शब्द की परिभाषा करने के प्रयास हेतुतः नहीं हुए तब तक केवल परम्परागत भावना से प्राचीन काल से जो हिन्दू राष्ट्र में समाविष्ट थे वे हिन्दुत्व की धार्मिक परिभाषा के बनते ही हेतुतः रुष्ट होकर एक-एक करके अलग हटने लगे—उन्हें अलग हटाने का विपक्ष का दांव सफल होने लगा।

बहुसंख्यकों के वैदिक धर्म को ही हिन्दू धर्म मानने वालों ने हिन्दू शब्द की परिभाषा किसी भी कुटिल उद्देश्य से नहीं की थी। संघ के बहुसंख्यकों के लक्षण को ही उस संघ का लक्षण स्वभावतः ही सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर माना जाता है। इतना ही नहीं, तो हिन्दूराष्ट्र से एक भी हिन्दू अलग न हो, प्रत्युत वह राष्ट्र अधिकाधिक संगठित हो ऐसा ही उन पूर्वाचार्यों का, हिन्दू शब्द की धर्मनिष्ठ परिभाषा बनाने में सद्उद्देश्य था। 'पर अनजाने से दिशाभ्रम हुआ इच्छा के विपरीत दुष्परिणाम हुआ।'

परन्तु, हिन्दुत्व के प्रस्तुत लेख के शीर्षस्थ दी हुई परिभाषा से इस भ्रान्ति के मूल पर ही कुठाराघात होता है। परिभाषा तो उसे ही कहते हैं जो अखण्ड में खण्ड बनाती हो, भौगोलिक प्रदेश की सीमाएँ भी दोनों पक्षों के लिए सामान्य ही रहती हैं। मुसलमानी धर्म में भी ऐसे अनेक पन्थ हैं कि वे मुस्लिम हैं या गैर-मुस्लिम यह विवाद परिभाषा से नहीं सुलझता। उदाहरण के लिए आजकल पंजाब में उग्र बना कादियानी पन्थ का विवाद देखिये। एक पक्ष कहता है कि वह मुस्लिम की परिभाषा में नहीं समाता तो दूसरे का यह कहना है कि वह समाता है। मारपीट होने की स्थिति आ चुकी है। ईसाइयों की भी वही अवस्था है, मार्मोन पन्थियों का उदाहरण देखिये। इस प्रकार प्रत्येक परिभाषा का सीमान्त जिस प्रकार विवादास्पद होता है उसी प्रकार वह इस परिभाषा का भी यदि हो तो भी कम से कम वर्तमान में तो 'अधिक से अधिक सत्य, हितकारी एवं सुलभ ऐसी हिन्दुत्व की यही एकमात्र परिभाषा उपलब्ध है। उसके द्वारा धर्मविषयक प्रश्नों के दुर्लंघ्य दलदल को एकदम अलग छोड़कर समस्त हिन्दुओं को एक ही हिन्दू ध्वज के नीचे संगठित करने का राजमार्ग मुक्त कर दिया गया है।

किसे हिन्दू कहें और किसे अहिन्दू ?

जो लोग श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त को प्रमाण मानते हैं वे 'सनातनी' कहलाते हैं। जो केवल श्रुति को ही प्रमाण मानते हैं वे 'वैदिक' कहलाते हैं। स्वयं के धर्म को वैदिक धर्म की शाखा इतना ही नहीं तो विकसित रूप भी मानने से जो नकारा करते हैं और इस प्रकार स्वधर्म को पूर्णतः स्वतन्त्र धर्म मानते हैं—ऐसे जैन, सिक्ख, बौद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(भारतीय बौद्ध) आदि कोई भी अपनी धर्मनिष्ठा का यत्किंचित् त्याग किये बिना ही प्रस्तुत हिन्दुत्व की परिभाषानुसार स्वतः को सुखेनैव हिन्दू मान सकता है, इतना ही नहीं तो उससे नकारा कर ही नहीं सकता। वैसे ही मुसलमान, ईसाई, ज्यू आदि जो अहिन्दू हैं, उन्हें अहिन्दू क्यों कहा जाये इसे निःसंदिग्धता से बताया जा सकता है। देखिये—

जैन हिन्दू कैसे ? प्राचीन वैदिक काल से ही जैनियों के पितरों की परम्परागत पितृभू भारतभूमि ही है तथा उनके तीर्थंकरादि धर्म-गुरुओं ने उनके जैन धर्म की स्थापना इसी भारतभूमि में की होने से यह भारतभूमि उनकी पुण्यभू (Holy Land) भी है ही। इस 'अर्थ में तथा केवल इसी अर्थ में' हमारे बहुसंख्यक जैन बन्धु स्वेच्छा से स्वतः को हिन्दू मानेंगे। क्योंकि, यह ऐतिहासिक सत्य है एवं उनमें से जिन लोगों का ऐसा विश्वास है कि, उनका धर्म वैदिक धर्म की शाखा न होकर पूर्णतः स्वतंत्र या अवैदिक धर्म है, उनकी इस धारणा को भी प्रस्तुत परिभाषा से तनिक भी ठेस नहीं पहुँचती। जिस काल में हिन्दू अर्थात् वैदिक, ऐसा हिन्दू शब्द का भ्रान्तिपूर्ण अर्थ माना जाता था तब भर ऐसे स्वतन्त्र धर्ममतवादी जैनियों को उस विशिष्ट अर्थ में स्वयं को हिन्दू कहलाने में विषमता का अनुभव होना स्वाभाविक ही था।

सिक्ख हिन्दू कैसे ? चूँकि उसी वैदिक सप्तसिन्धु की सिन्धुसरिता से सरस्वती तक के आर्यों के मूलस्थान में उनका आज भी परम्परागत निवास है, अतएव भारतभूमि ही उनकी पितृभू है तथा चूँकि, उनके नानकादि धर्मगुरुओं ने इसी भूमि में उनके सिक्ख धर्म की प्रस्थापना की—उनके धर्म की जड़ भी इसी भूमि में फैली हुई है, अतः इसी अर्थ में यह भारतभूमि उनकी पुण्य भूमि है, Holy-Land है। अतः सिक्ख हिन्दू ही हैं, फिर चाहे वे वेद को मानते हों या न मानते हों, मूर्तिपूजा करते हों या न करते हों।

आर्यसमाजी हिन्दू कैसे ? जहाँ तक पितृभूमि के प्रति गर्व का,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-H
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar 168D26

प्रेम का प्रश्न है, आर्यसमाजी तो किसी से पीछे रहने वाला नहीं तथा वैसे ही इस भारत-भूमि को पुण्यभूमि का सम्मान देने में भी वे सदा ही आगे रहते हैं। वे तो हिन्दू हैं ही, फिर चाहे वे पुराण एवं स्मृतियों को मानें या न मानें।

वही बात 'लिंगायत राधास्वामीपन्थी' आदि हमारे यच्चयावत् धर्मों एवं धर्मपन्थों की है अपरंच, 'भील, सन्थाल, कोलेरियन' आदि जो लोग भूत-प्रेतों की या पदार्थ की पूजा करने वाले (Animists) होंगे उनकी भी परम्परागत पितृभक्ति भारतभूमि ही है, तथा कम-से-कम ज्ञात इतिहासकाल से तो उनके पूजापन्थ इसी भारत-भूमि को पुण्यभू भी मानते आये हैं। अतएव वे भी हिन्दू ही हैं। इस प्रकार समस्त हिन्दू बन्धु इस परिभाषा में सहज ही समा जाता है।

पर मुसलमान-ईसाई-ज्यू हिन्दू क्यों नहीं माने जा सकते ? यद्यपि उनमें से ऐसे कई लोगों की परम्परागत पितृभूमि यह भारतभूमि ही है, जो धर्मपरिवर्तन से भ्रष्ट हो चुके हैं, फिर भी उनके धर्म अरबस्थान पैलेस्टाइन आदि भारतबाह्य देशों में उत्पन्न होने से, वे उन भारत-बाह्य देशों को ही स्वत: की पुण्यभू (Holy Land) मानेंगे। इस प्रकार यह भारत-भूमि उनकी दृष्टि में पुण्यभू न होने से वे हिन्दू नहीं माने जा सकते।

वैसे ही चीनी-जापानी-स्यामी आदि को भी पूर्णतः हिन्दू क्यों नहीं माना जा सकता ?—जो भी, उपर्युक्त लोग धर्म से हिन्दू (बौद्ध) हैं और इस प्रकार भारतभूमि उनकी पुण्यभू है तो भी वही भारतभूमि उनकी पितृभू नहीं है। उनका-हमारा सम्बन्ध धर्म का है। पर, राष्ट्रभाषा, वंश, इतिहास आदि सर्वथा भिन्न है। उनका-हमारा एकराष्ट्रीय सम्बन्ध तो मूलतः ही नहीं है, इसीलिए जो भी वे हिन्दू धर्म के अन्तर्गत हैं तो भी सम्पूर्ण हिन्दुत्व के अधिकारी नहीं हो सकते। स्थिति भी वैसी ही है। जापानी, चीनी आदि बौद्ध होने के नाते स्वयं को हिन्दू धर्म के अनुयायी कहला सकते हैं, पर वे हिन्दूराष्ट्र के अन्तर्गत नहीं रहेंगे, संलग्न तो निश्चित रूप से ही नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहलायेंगे । 'हिन्दू धर्म परिषद् में' उन्हें समानता से समाविष्ट किया जा सकता है—पर 'हिन्दूमहासभा में' अर्थात् हमारी 'हिन्दूराष्ट्रसभा में' उन्हें समाविष्ट नहीं किया जा सकता। उनकी राष्ट्रसभाओं में हमें समाविष्ट नहीं किया जा सकता। पर वैदिक, सिक्ख, भारतीय बौद्ध, जैन, सनातनी आदि हम सब लोग जो हिन्दुत्व के पूर्णतः अधिकारी हैं, एकराष्ट्रीय भी हैं ही, क्योंकि, भारतभूमि केवल हमारी पुण्यभू ही न होकर पितृभू भी है।

शुद्धीकृतों की समस्या भी इस परिभाषा से उसी प्रकार हल की जा सकती है। जो पूर्व में हिन्दू ही थे वे शुद्ध होते ही पूर्ण रूप से हिन्दुत्व के अधिकारी हो जाते हैं, क्योंकि उनकी पितृभू एवं पुण्यभू दोनों ही भारतभूमि ही है। पर, जो अमेरिकन, आंग्ल (अंग्रेज) आदि विदेशी हैं, जिनकी पितृभू भारतभूमि नहीं है, उनके द्वारा 'हिन्दूधर्म का ग्रहण होते ही वे धर्म से हिन्दू हो जाते हैं, पर राष्ट्रीय दृष्टि से भिन्न ही होने से सम्पूर्ण हिन्दुत्व के अधिकारी नहीं माने जा सकते।' क्योंकि, जो भी भारतभूमि उनकी पुण्यभू होगी, तो भी, पितृभू तो कोई दूसरी भूमि होगी। 'उनमें से जो लोग शरीर सम्बन्ध से हमसे विवाहबद्ध होंगे—अर्थात् वंश, जाति, राष्ट्र आदि रूपों से—रक्तबीज से हमसे एकरूप होंगे या हिन्दुस्थान की नागरिकता प्राप्त कर उसे पितृभू मानेंगे तो वे भर पूर्णतः हिन्दुत्व के अधिकारी होंगे।' 'हिन्दू' की हमारी यह परिभाषा 'समस्त संसार में' हिन्दूधर्म का प्रचार करने के मार्ग में किसी भी प्रकार बाधक नहीं है।

उपसंहार

प्रस्तुत लेख की लेखन-सीमा में यथासम्भव विस्तार से हिन्दू शब्द की विवेचना कर उसकी प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार हिन्दू किसे कहा जाये तथा अहिन्दू किसे कहा जाये इस प्रश्न को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि उसके सम्बन्ध में किसी विवाद की कोई सम्भावना बची नहीं रहती। परन्तु फिर भी अब यह ध्यान में रखना होगा कि उक्त 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग हम प्रस्तुत सुनिश्चित अर्थ में ही करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य अर्थ में उसका प्रयोग कैसे किया जाये एवं क्यों किया जाये इसको अब स्पष्ट होने से उसके अपप्रयोगों को कैसे टाला जाये यह भी अनायास ही उसमें दिग्दर्शित है। परन्तु, फिर भी उसका एक 'अत्यन्त' आत्मघाती अपप्रयोग, जिसे हमें विशेष रूप से ध्यान में रखकर टालना चाहिये, उसका भर स्वतन्त्र उल्लेख करना अत्यावश्यक है। जिनमें हिन्दू संगठन की तीव्र लगन है, ऐसे नेताओं के मुख से, समाचारपत्रों में, इतना ही नहीं तो प्रत्यक्ष हिन्दूमहासभा के वाक्पीठ से भी 'हिन्दू तथा जैन', 'हिन्दु तथा सिक्ख', 'हिन्दुओं की अछूतों के प्रति सहानुभूति' ऐसे शब्द प्रयोग केवल उनकी अभ्यस्तता के कारण प्रयोग में आते हुए दिखाई देते हैं। पर इनके स्थान पर ये वाक्य ऐसे होने चाहिये—'सवर्णों को चाहिये कि वे अछूतों के लिए मन्दिर के द्वार खोल दें।' हिन्दू अछूतों के लिए द्वार खोल दें, यह अपप्रयोग है, क्योंकि, दोनों ही हिन्दू हैं।' सिक्खों के प्रति सिक्खेतर हिन्दुओं की सहानुभूति है, पंजाब में वैदिक एवं सिक्ख एक होकर मुसलमानी आक्रमण का प्रतिकार करें।' ऐसे वाक्य चाहिए। 'सिक्खों के प्रति हिन्दुओं की सहानुभूति है, सिक्ख तथा हिन्दू मुसलमानों का प्रतिकार करें,' 'ये तो घातक अपप्रयोग हैं, क्योंकि, उन वाक्यों से जो सिद्ध करना होता है वही असिद्ध होता है।' सिक्ख तथा हिन्दू भिन्न-भिन्न हैं, सिक्ख हिन्दू नहीं हैं, यह, जो अनावश्यक है वही सूचित होता है। इतना ही नहीं तो समाचारपत्रों में ऐसे वाक्य भी आते हैं कि, जैनियों से हम हिन्दुओं का यह निवेदन है कि, वे स्वयं को हिन्दू न कहलाने का दुराग्रह त्याग दें।' इस वाक्य से अधिक वदतोव्याघात का उदाहरण भर क्या दिया जा सकता है? पुरानी अभ्यस्तता से जंग खाई हुई लेखनियाँ अब हमें फेंक देनी चाहिये। 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग 'वैदिक' या 'सनातनी' ऐसे किसी एकपक्षीय अर्थ में न करते हुए, उसके स्वतन्त्र, व्यापक एवं निश्चित अर्थ में ही प्रयुक्त करना चाहिए। कल का ही दैनिक पत्र देखिये : 'हिन्दू तथा सिक्ख ये दोनों समाज जिन्ना से चर्चा कर रहे हैं,' ऐसे वाक्य कितने घातक हैं? पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका सदा ही प्रयोग होता है। यदि धार्मिक उपभेदों को व्यक्त करना हो तो वहाँ जैन, सिक्ख, वैदिक, आर्य, सनातनी इन तदर्थक विशिष्ट शब्दों की योजना करें। 'हिन्दू तथा आर्यसमाजी ऐसा न कहते हुए सनातनी तथा आर्यसमाजी' ऐसा कहें।

हिन्दुत्व की प्रस्तुत परिभाषा के लिये शासनाधिकृति भी प्राप्त कर लो !

इसी प्रकार जनगणना के समय अपनी इच्छा के अनुसार किसी को भी 'हिन्दू विभाग' से अलग निकाल कर, अलग से लिखने की शासकीय परम्परा, 'हिन्दुत्व' की हमारी किसी निश्चित परिभाषा के अभाव में चलती आई है, उसे बन्धन लगाने के लिये यह सत्य, सरल, एवं जिसे अब बहुत सी संस्थाओं ने मान्यता प्रदान की है ऐसी हिन्दुत्व की परिभाषा को ही हम एक मुख से शासन के सम्मुख प्रस्तुत करें तथा आगामी जनगणना के पूर्व उसके लिये शासनाधिकृति भी प्राप्त करवा लें, जिससे 'तुम्हारी तो कोई परिभाषा ही नहीं' यह बहाना तो कोई कर नहीं सकेगा।

प्रत्येक हिन्दू को यह कण्ठस्थ होना चाहिये कि, आसिन्धु-सिन्धु यह भारत-भूमिका जिस-जिसकी पितृभू एवं पुण्यभू है वह प्रत्येक हिन्दू है। सन्ध्याकर्म के समान ही इस मन्त्र का जाप भी प्रातःस्मरण में अपने बालकों द्वारा करवाया जाना चाहिये कि :

आसिंधुसिंधुपर्यंता यस्य भारत भूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिंदुरिति स्मृतः ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी राष्ट्रभाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ! हिन्दुस्थानी नहीं! उर्दू तो कदापि नहीं!!

हिन्दू-मुसलमानों की एकता के विचार से बावले बने लोग कितना भी त्याग क्यों न करें, उससे मुसलमानों को सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। अतएव राष्ट्रीय भाषा एवं राष्ट्रीय लिपि के प्रश्न को सुलझाने का इष्टतम एवं एकमेव मार्ग यही है कि प्रत्येक हिन्दू प्रकट-रूप से एवं निर्भयता से यह प्रतिज्ञा करे कि :

"संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही हम हिन्दुओं की राष्ट्रभाषा है !
एवं संस्कृतनिष्ठ नागरी लिपि ही हम हिन्दुओं की राष्ट्रलिपि है !"

जब से हिन्दी को हिन्दुस्थान की राष्ट्रभाषा बनाने का आन्दोलन हमारे राष्ट्र में प्रारम्भ हुआ है तथा जैसे-जैसे सारे हिन्दुओं में वह फैलने लगा है, तब से तैसे-तैसे भारतीय मुसलमान उसे विफल करने के बड़े ही दृढ़ प्रयास में जुटे हुए हैं। उनका उद्देश्य एकमात्र यही है कि सात करोड़ मुसलमानों की इच्छा के अनुसार तेईस करोड़ हिन्दू भी उर्दू को ही राष्ट्रभाषा बनाने का यत्न करें। इसलिये नहीं कि, उर्दू हिन्दी से श्रेष्ठ है—उसकी तो बात ही नहीं ! जिस अरबी के भरोसे उर्दू अपनी दरिद्रता को दूर करने की कामना करती है वह अरबी, हिन्दी के लिए असीम शब्द-सम्पदा की पूर्ति करने हेतु सिद्ध रहने वाली संस्कृत-भाषा से अधिक या उसके समान सम्पन्न है, इसलिए नहीं —रानी की तथा भिखारिन की सधनता तो मूलतः ही अतुलनीय है। उर्दू में हिन्दी की अपेक्षा कुछ अधिक विशिष्ट गुण है, इसके लिए भी नहीं, तो केवल मात्र इसीलिए कि वह मुसलमान अल्पसंख्यकों की प्रिय भाषा है। तेईस करोड़ हिन्दुओं को यह राष्ट्र उर्दू से श्रेष्ठ होने वाली अपनी हिन्दी भाषा का त्याग कर इस उर्दू को ही स्वतः की राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा का सम्मान दे यह है उन मुसलमानों का हठ और यदि उसे पूरा नहीं किया गया तो ! 'उर्दू' को तुम राष्ट्रभाषा नहीं मानोगे तो ! हम हिन्दी या अन्य किसी भी भाषा को राष्ट्रभाषा होने नहीं देंगे! जो भी हमारे घरों में, इतना ही नहीं तो कई प्रदेशों में हिन्दी मातृभाषा है तो भी हम उसका विस्मरण कर, उसे हटाकर उर्दू को ही प्रारम्भ करेंगे, नागरी लिपि को स्पर्श करना हमारे लिए पाप होगा, इतना ही नहीं तो जिस भी भाषा को राष्ट्रभाषा का सम्मान दिया जायेगा, उसे नाममात्र के लिए 'हिन्दी' यह नाम भी हम रखने नहीं देंगे । राष्ट्र-भाषा का नाम तो 'उर्दू' यही होना चाहिये । समस्त मुसलमान, भाषा एवं लिपि के सम्बन्ध में एकमुख से प्रारम्भ से ही यह माँग कर रहे हैं ।

'यह कैसा समझौता'

हम हिन्दुओं में एक ऐसा वर्ग है, जिसकी यह विचित्र धारणा है कि कोई भी 'राष्ट्रीय' आन्दोलन तब तक 'राष्ट्रीय' हो ही नहीं सकता जब तक कोई ऐरा-गैरा मुसलमान उसमें ला करके न बिठाया जाये । इस वर्ग के लोगों को जब यह दिखाई दिया कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा एवं नागरी को राष्ट्रलिपि बनाने में मुसलमानों का उपर्युक्त तीव्र विरोध है, तो वे बड़े बेचैन हो उठे । हिन्दी को राष्ट्रभाषा का सम्मान देने हेतु जिस वर्ग के बहुत से लोगों ने बड़े परिश्रम उठाये हैं, उस वर्ग के नेता महात्मा गांधीजी हैं, यह सभी को ज्ञात है । हिन्दी एवं नागरी का प्रसार करने में जिन राष्ट्रभक्तों ने मनःपूर्वक यत्न किये हैं उनमें गांधीजी के परिश्रम उल्लेखनीय हैं । परन्तु 'राष्ट्रीयता' के सम्बन्ध में उनकी उपर्युक्त विक्षिप्त धारणा होने से, तथा जो राष्ट्रहित में हो, वही 'राष्ट्रीय' ऐसी 'राष्ट्रीयता' की परिभाषा से मानो वे अनभिज्ञ होने से, अल्पसंख्यक मुसलमान जो भी आततायी हठ करेंगे उस प्रत्येक को पूरा कर उनकी जीहुजूरी किये बिना उन्हें चैन ही नहीं पड़ता । उन्होंने इस हिन्दी के प्रश्न के सम्बन्ध में भी मुसलमानों को सहलाने का, दुलारने का, मुसलमानों का धर्मोन्मादी हठ भी पूरा करने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपाटा ही लगा दिया है, इतना ही नहीं तो स्वतः होकर ही एक समझौता भी सुझाया है ।

एकता के बावले

वास्तव में समझौते का प्रश्न तो वहाँ आता है जहाँ सम्बन्धित दो पक्षों को कुछ एक कार्य तो मान्य होता है, परन्तु उपयोगों के सम्बन्ध में भर मतभेद होता है । कुछ त्याग हम करते हैं कुछ आप करो, कुछ पाकर कुछ खोकर जो लेन-देन होता है उसे समझौता कहते हैं । पर राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर मुसलमान समझौता तो चाहते ही नहीं । ऐसी अवस्था में उनके अनुसार उर्दू को ही राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्र लिपि मानना, यही एकमात्र समझौता सम्भव है । पर इस प्रकट वास्तविकता को हेतुतः अनदेखा कर ऐसा एक समझौता गांधीजी आदि लोगों ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सुझाया, जो केवल हिन्दू मात्र के लिये ही अनिष्ट है और फिर भी मुसलमानों ने उसे ठुकराया, ऐसी अवस्था में भी मानो वह दोनों पक्षों को स्वीकार्य ही है ऐसा बहाना बनाकर उसके अनुसार हिन्दी की तोड़फोड़ करने का कार्य इन एकता के बावले लोगों ने बड़ी ही धूमधाम से प्रारम्भ किया है, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी के अभिमानी लोगों में तनतनाहट होना स्वाभाविक ही है । राष्ट्रीय भाषा का प्रश्न प्रत्येक प्रदेश की जनता की आत्मीयता का प्रश्न है । उसके भले-बुरे परिणामों को प्रत्येक प्रादेशिक भाषा एवं संस्कृति को भी भुगतना पड़ेगा, इसीलिए महा-राष्ट्रीय जनों को भी हिन्दी को तोड़-मरोड़कर हिन्दुओं की भाषा-पर मुस्लिम संस्कृति की चड्ढी कसने का प्रयास करने वाले एकता के बावले समझौता विवाद का कुछ ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है ।

अच्छा भाई, 'हिन्दी' नहीं तो 'हिन्दुस्थानी' कहो !

राष्ट्रभाषा के लिए सर्वमान्यता प्राप्त करने के उद्देश्य से गांधीजी आदि एकता के बावले लोगों ने मुसलमानों के हृदयपरिवर्तन हेतु जो समझौता सुझाया है तथा मुसलमानों द्वारा उसके ठुकराये जाने पर भी मानो जैसे उन्होंने उसे स्वीकृत ही किया हो, ऐसी भोली भावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हिन्दी की तोड़-मरोड़ चला रखी है, वह समझौता इस प्रकार है— सब-कुछ करने पर भी जब मुसलमान नागरी लिपि को मान्यता नहीं देते तो लिपि के 'एक' ही होने का विचार त्याग दिया जाय। राष्ट्र-भाषा हिन्दी को हिन्दू नागरी में लिखें तथा मुसलमान अलेफबे की उर्दू लिपि में—एवं दोनों लिपियों को राष्ट्रीय-लिपि की पदवी प्रदान की जाये--समस्त राष्ट्रीय शासकीय लेखन दोनों लिपियों में प्रकाशित किया जाये तथा दूसरा घाटे का सौदा यह कि हिन्दी भाषा में संस्कृतोत्पन्नता की एवं संस्कृतनिष्ठता की जो दुर्गंध मुसलमानों को आती है उसे यथासम्भव कम किया जाये—और इसीलिए हिन्दी भाषा में संस्कृतोत्पन्न शब्दों के समान ही सैकड़ों अरबी, फारसी आदि उर्दू शब्द भी मिलाये जाएँ। तीसरी बात यह है कि हिन्दी का नाम भी 'हिन्दी' ऐसा न रखते हुए, 'हिन्दी यानि हिन्दुस्थानी' ऐसा रखा जाये !

उक्त समझौते से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसमें पीछे हटने की जो बात है वह हिन्दी भाषा की तोड़-मरोड़ करने वाली है, अर्थात् केवल हिन्दुओं की ओर से ही है। समझौते का अर्थ होता है दोनों पक्षों की लेन-देन—पर उसके अनुसार मुसलमानों ने कुछ भी नहीं खोया—प्रत्युत, हिन्दी की तोड़-मरोड़ के प्रतिमूल्य में मुसलमान हम पर जो उपकार करें ऐसी हम हिन्दुओं को अपेक्षा करनी चाहिए। वह इतनी ही कि इतनी तोड़-मरोड़ करने के उपरान्त तो मुस्लिम उस 'हिन्दी यानी हिन्दुस्थानी' को राष्ट्रभाषा मान लें। पर क्या मुसलमान आपकी इस अपेक्षा को भी पूरा करना चाहते हैं ? नहीं, कदापि नही। उसका विवेचन इस प्रकार है—

नाम में भी उर्दू शब्द

हिन्दी के नामों से भी मुसलमानों को बहुत पहले से ही बड़ी चिढ़ है। इसीलिये हमारे भोले-भाले लोगों ने उसका नाम बदलकर समझौते का नाम रखा 'हिन्दी याने हिन्दुस्थानी'। ज़रा सोचिये, "हिन्दी अर्थात् हिन्दुस्थानी', 'हिन्दी अथवा हिन्दुस्थानी', ऐसा नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, तो 'हिन्दी याने हिन्दुस्थानी' यह 'याने' क्या वस्तु है इसे महाराष्ट्र एवं मद्रास के लाखों हिन्दू तथा सैकड़ों मुसलमान जानते भी नहीं। पर प्रत्येक शब्द-समुच्चय में सभी शब्द संस्कृतोत्पन्न नहीं होने चाहिये। नहीं तो राष्ट्रभाषा की अराष्ट्रभाषा बन जाने का भय है। राष्ट्रभाषा तो वह कि जिसके प्रत्येक शब्द-समुच्चय में कम-से-कम एक उर्दू विदेशी शब्द तो होना ही चाहिये ! इसलिये 'याने' यह उर्दू शब्द उस नाम में ही जड़ दिया है। 'याने' इस उर्दू शब्द का अर्थ है 'या' 'अर्थात्'। जिन लाखों मुसलमानों की मातृभाषा मुगल काल से हिन्दी ही रही है वे हिन्दी को उर्दू लिपि में छापकर 'हिन्दुस्थानी' ऐसा स्व-आयोजित नाम ही उसे लगाते आये हैं। इसलिए उसका 'हिन्दी याने हिन्दुस्थानी' ऐसा हिन्दी-मुस्लिम नाम सिद्ध होता है। ऐसी स्वतः की धारणा बनाकर इन एकता के बावले लोगों ने हिन्दी का नया नाम रखा और मन-ही-मन कहने लगे—'अब राष्ट्रभाषा की समस्या सुलझ गई।'

देश का नाम भी बदलो !

पर वह समस्या केवल नाम की ही है इसे भर वे न समझ सके। जो भी मुसलमान, उर्दू में छपे हिन्दी को आज तक हिन्दुस्थानी यह नाम देते आये तो भी अब पेनइस्लाम का भूत सवार होने से उन मुसलमानों को पूर्व में उनके द्वारा योजित 'हिन्दुस्थानी' यह नाम भी असह्य हो रहा है, इस वास्तविकता को हमारे एकता के बावले लोग भूल गये। 'हिन्दी' नाम के अनुसार ही 'हिन्दुस्थानी' नाम को भी हिन्दुत्व की दुर्गंध आती ही है ऐसा अब मुसलमानों का कहना है। भाषा को ही नहीं तो इस देश को भी 'हिन्दुस्थान' कहने में मुस्लिम लोग आनाकनी करने लगे हैं। इस विवाद को उन्होंने प्रकट रूप से सम्मुख रखा है, वे कहते हैं कि इस देश का 'हिन्दुस्थान' यह नाम भी एकताविघातक होने से, 'पाकस्तान' यह शुद्ध मुस्लिम नाम ही रखना चाहिये। उर्दू में पाक का अर्थ है—मुस्लिम धर्म के अनुसार शुद्ध, नापाक अर्थात् मुस्लिम-धर्म के अनुसार निषिद्ध—'अशुद्ध'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस देश में मुस्लिमों का वर्चस्व होता है वह देश पाक होता है, इसलिये इस देश का, हिन्दुत्व का वर्चस्व बताने वाला 'हिन्दुस्थान' यह नाम बदलकर, उसे मुस्लिम वर्चस्व बतानेवाला 'पाकस्तान' यह नाम देना चाहिये। उर्दू-साहित्य के लिये सर्वथा अपरिचित ऐसे महाराष्ट्र आदि प्रदेश के लोग ऐसा सोच सकते हैं कि हमारी उपर्युक्त विचारधारा विडम्बनार्थक या विपर्यस्त होगी। पर हमारा यह जो कथन है वह पूर्णतः सत्य है। मुसलमानों में आगाखान, इकबाल-जैसे बड़े-बड़े लोगों से लेकर लाहौर-लखनऊ के पैसा-अखबार (सस्ते समाचार-पत्र) तक में हिन्दुस्थान शब्द पर उपर्युक्त आक्षेप लगाकर उन पर प्रकट तथा कड़वी भाषा में विवेचना होती है। साथ ही पंजाब, कश्मीर, सिन्ध, पश्चिमी सीमान्त प्रदेश आदि हिन्दुस्थान के प्रदेशों का एक बड़ा टुकड़ा तोड़कर कम-से-कम उसे तो भी आज के आज ही 'पाकस्तान' मुस्लिम वर्चस्व का शुद्ध देश, यह नाम दिया जाये ऐसी उनकी मांग सतत चल रही है। ऐसी मनोभावना वाले मुसलमानों को 'हिन्दी' यह नाम जितना अप्रिय है उतना ही 'हिन्दुस्थानी' यह नाम भी अप्रिय ही लगता है। ऐसी अवस्था में एक-राष्ट्रभाषा निर्मिति की लालसा से हिन्दी का नाम परिवर्तित कर उसे 'हिन्दी याने हिन्दुस्थानी' ऐसा खिचड़ी नाम रख दिया जाये तो भी समस्या कैसे सुलझेगी ? मुसलमान कहते हैं हिन्दुस्थानी भी नहीं 'पाकस्तानी' कहो।

सड़कछाप 'बोली' एवं राष्ट्र 'भाषा' ?

इसी कारण से हमारे एकता के बावले लोगों ने सुझाये हुए समझौते की दूसरी सुविधा उधर मुसलमानों को सन्तुष्ट कर नहीं सकती और इधर तो वह हिन्दी का स्वरूप ही विकृत कर देगी। जानते हो वह सुविधा क्या है ? वह सुविधा है—अरबी, फ़ारसी आदि उर्दू में आने वाले सैकड़ों विदेशी शब्दों की हेतुतः हिन्दी में मिलावट करना। लखनऊ के बाज़ार में एक साथ कारोबार करते हुए हिन्दू-मुसलमान जिस हिन्दी, उर्दू, अरबी, फ़ारसी, तुर्की, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की खिचड़ी पकाकर एक-दूसरे के विचारों से अवगत होते हैं, वह सड़कछाप बोली राष्ट्रभाषा होगी ?

किसी भी देश की राष्ट्रभाषा तो वह होती है जिसमें उस राष्ट्र का सारा उच्च साहित्य होता है। भारत की राष्ट्रीय भाषा वह हो सकती है, जिसमें भारत के अत्युच्च विचार, दर्शन, काव्य, रसायन, वैद्यक, पदार्थविज्ञान, यन्त्रशिल्प, भूगर्भ आदि अनेक विज्ञानों का एवं राजकीय, सामाजिक, धार्मिक जीवन का व्यक्तीकरण सम्भव हो सके, ऐसी सम्पन्नता, प्रौढ़ता तथा प्रगतिशीलता उसमें हो, ऐसे विभिन्न विचारों को, भावों को, भावनाओं को व्यक्त करने का सामर्थ्य क्या सड़कछाप बाज़ारू बोली में भी कभी हो सकता है ? रसायन या गणित या वैद्यक या ज्योतिष या यन्त्र आदि विज्ञानों में आवश्यक हज़ारों पारिभाषिक शब्द क्या ऐसी सड़कछाप बोली में भी कभी मिल सकते हैं ? यदि वह सर्वथा असम्भव है तो फिर, इस राष्ट्रीय भाषा में व्यक्त होने वाले अत्युच्च काव्य-दर्शन-विज्ञानादि के हेतु आवश्यक होने वाले हज़ारों पारिभाषिक एवं प्रौढ़ कोमल एवं रुचिर, पारम्परिक एवं गूढ़ सन्दर्भ सूचित करने वाले, अर्थवाहक एवं ध्वनिमय ऐसे अनेकानेक शब्द किस रत्नाकर से हम प्राप्त करें ? अरबी से ? वह तो स्वयमेव ही अत्यन्त दरिद्री है। इतनी दरिद्र है कि जब यूरोप का सारा आधुनिक विज्ञान अनुवादित करने का अतातुर्क कमाल ने निश्चय किया, तब अरबी भाषा उसे ही इतनी बेकार प्रतीत हुई कि उसने इस घोषणा के साथ उसे तुर्किस्तान से बाहर भगाया कि, यदि तुर्कों को प्रगत साहित्य आवश्यक हो, तो उस परायी अरबी भाषा को छोड़ने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। तुर्किस्तान तो खिलाफ़त का केन्द्र या तथा अरबी खिलाफ़त की धार्मिक भाषा थी, पर तुर्कों के स्वाभिमान एवं प्रगति के प्रतिकूल प्रतीत होते ही जिस अरबी को तुर्कों ने निषिद्ध-भाषा घोषित किया, उस परायी एवं शब्द-दरिद्री अरबी को, क्या हम हमारे हिन्दुस्तान के स्वाभिमान एवं प्रगति के लिए सुसंगत तथा सहायक समझें ? एतदर्थ, इन हज़ारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिभाषिक नूतन शब्दों को हमें हमारी उस सुसम्पन्न संस्कृत भाषा से ही प्राप्त करना चाहिए—साध्य करना चाहिए, जो मानो शब्द-रत्नों का रत्नाकर ही है, हिन्दी की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है, इतना ही नहीं तो उसकी वह जननी भी है। शब्द-प्रसवक्षमता में संस्कृत से बढ़कर कोई भी भाषा संसार में आज दिखाई नहीं देती। उस संस्कृत का शब्दरत्नाकर एवं साहित्य-क्षीरसागर जब द्वार पर है तब कृपणता की नारियली हाथ में लेकर मरुभूमि के अरबी रेगिस्तान में 'पानी! पानी!' करते हुए हम क्योंकर भटकें?

भाषा में जातिक्रम ?

एकता के बावले लोग यदि ऐसा कहें कि, मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए कुछ शब्द तो अरबी से लेंगे और फिर यथावश्यक संस्कृत से, तो फिर हम उनसे यह पूछना चाहेंगे कि क्या मुसलमानों की किसी संस्था ने या उनमें से प्रमुख लोगों ने आपको कोई ऐसा अनुपात या प्रमाण बताया है कि, उस अनुपात या प्रमाण में अरबी शब्दों को हिन्दी में ठूंसने पर मुसलमान उसे राष्ट्रभाषा स्वीकार करेंगे? जिस प्रकार विधान सभाओं में मुसलमानों को विशिष्ट जातीय प्रतिनिधित्व दिया गया है, उसी प्रकार भाषा में भी जातिक्रम का शब्दप्रतिनिधित्व मुसलमानों को देना चाहते हो क्या? और यदि चाहते हो तो किस प्रमाण में या किस दर से देना चाहते हो? पाँच, पचास, पाँचसौ, उर्दू अरबी शब्दों को हिन्दी में समाविष्ट करके तथा उसका नामाभिधान 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' ऐसा करके काम चलने वाला नहीं है। क्योंकि, यदि सौ प्रतिशत शब्द अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि विदेशी भाषाओं से प्राप्त करोगे अर्थात् हिन्दी को शुद्ध उर्दू बनाओगे तो ही भर मुसलमान सन्तुष्ट होंगे? ऐसी उनकी प्रतिज्ञा को जब वे निडरता से घोषित करते हैं तो उसे सुना-अन-सुना करने से वे धोखा खा जायेंगे ऐसे मुसलमान भोलेभाले हैं ऐसा मत समझो। वे समझौता तो चाहते ही नहीं। निजबल से उर्दू को ही राष्ट्रभाषा बनाकर छोड़ेंगे ऐसी उनकी शेखीभरी हिम्मत है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रौर धौंस भी। मराठीभाषी पाठकों को इस विषय का आवश्यक संकलित एवं युक्तिपूर्ण ज्ञान न होने से उसके सम्बन्ध में कुछ काम-चलाऊ तथा विवादरहित प्रमाण हम यहाँ दे रहे हैं।

उर्दू का स्वरूप

जिस उर्दू भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाने का मुसलमानों का इतना हठ है, वह उर्दू वास्तव में कैसी है इसकी छोटी-सी बानगी भी यदि हम सामान्य पाठकों के सम्मुख रखें तो उससे ही यह समझ में ग्रा जाएगा कि बहुसंख्य हिन्दुओं को उसे राष्ट्रभाषा बनाने का विरोध क्यों कर करना चाहिये। वर्तमान में प्रचलित कुछ सामान्य लेखों में से उर्दू के दो-तीन उद्धरण यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

"गालिब की शायरी में निहायत जवानी भी जगह-जगह भरी है। मज़ामीन भी उसने नये शामिल किये हैं, जिसे वह मसायले तसव्वुफ़ कहता है।"

"इतिल्ला दी जाती है के सब लोग सायलाने मजकूर की जात या जायदाद के खिलाफ़ मुताल्लिक दावे रखते हों वे इस इश्तिहार के तारीख़ से हाकिम के ग्रागे तहरीरि ग्रर्ज़ पेश करें। ऐसा न करने पर सायले मजकूर जुमला ग्रगराज व मोरकाजात के लिये जेरद का मजकूर बाजाब्ता बेबाक मुतसव्विर होगा।"

ग्रब उर्दू कविता की बानगी देखिये—

"परतवे खुरसे है शबनम्को फनाकि तालीम। हम भी एक इनायत की नज़र होने तक॥ फिर दिल तवाफ़ कूये मलामत को जाय है। पिंदारका सनम्कदा वीरां किये हुए हैं॥"

यह ऐसी उर्दू भाषा बंगाल, बिहार, ग्रोरिसा, महाराष्ट्र से रामेश्वर तक के करोड़ों हिन्दुग्रों की ही नहीं तो लाखों मुसलमानों की भी समझ में ग्राना कठिन है यह बताने की क्या कोई ग्रावश्यकता है कि बहुसंख्यक हिन्दुग्रों की भाषाग्रों के लिए यह कितनी ग्रसंगत, प्रतिकूल एवं ग्रपरिचित है? उपर्युक्त उर्दू के उद्धरण मूलतः ही हिन्दुग्रों के लिये दुर्बोध हैं। पर साथ ही यदि हम इस बात का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करें कि ये उद्धरण केवल उर्दू भाषा में ही नहीं तो अलेप्बेते की उर्दू लिपि में ही मुद्रित होने चाहिए ऐसा मुसलमानों का हठ है, तो उन उद्धरणों को समझ पाना तो छोड़ो पर उन्हें पढ़ना भी कितना दुर्घट हो जायेगा, उसे अब मराठीभाषी पाठक कुछ प्रमाण में तो अवश्य ही समझ जायेंगे ।

यह उर्दू—यह हिन्दी ?

अब दोनों भाषाओं के प्रचलित लेखन के छोटे-से उद्धरण देखिये—"अगर बर तकदीर कोई सही मोशारिक मेरा पैदा होकर इस्तेहकाक ज़ाहीर करे, या मुनमिक कब्जा बाकह न दे या किसी किफ़ालत मवाखजा की वजह से कब्जे, मुर्तेहनान मोसूफ़चे खलल वाके हो तो मुर्तेहिन को यखतियार होगा कि जुज़ या क़ुल जरे रहन मयसूद तारीखे तहरीर वासीका हजासे जायदादे मज़कूराबाला व दीगर जायदाद व जात मुनमिकर से वसूल कर ले और शर्ते इनफिफ़ाक यह है के जब जरे रहना आदा कर दूँगा तो शैं मराहून इनफ़िकाक करा लूँगा ।" यह हुआ उर्दू का नमूना, अब इसी प्रकार हिन्दी का व्यवस्थापत्र देखिये : "समस्त धन उक्त अधिगृहिता से (मुर्तहिन) प्राप्त करा लिया, अब कुछ शेष न रहा । आज से उसका स्वामित्व भूमि पर करा दिया । आज से वह अपने-आपको उक्त भूमि स्वामी समझें । जब कभी जेठ मास में बन्धक धन (जर) चुका देंगे तब भूमि को मुक्त करा लेंगे, तब तक अधिगृहिता को अधिकार होंगे कि वह स्वयं भूमि जोते—उक्त भूमि से वृक्षों की लकड़ी लेता रहे । जो आर्थिक हानि उसको उठानी पड़ेगी उसे वह हमसे तथा हमारी समस्त चल या अचल संपत्ति से प्राप्त कर लें ।"

एक विषय पर लिखे हुए उपर्युक्त दो लेखों में से तुलनात्मक रूप से कौनसी भाषा बहुसंख्यक हिन्दुओं की समझ में आ सकती है, या सुनते ही अपनी-सी लगती है, इसे अब सामान्य पाठक भी समझ सकते हैं । बहुसंख्यकों के लिए अनुकूल एवं सुलभ भाषा ही हिन्दुस्थान की राष्ट्रभाषा हो इस स्वयंसिद्ध आधार को यदि माना जाये तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होनी चाहिये। यहाँ पर यह प्रश्न पूर्णतः अप्रस्तुत है कि भाषा की दृष्टि से उर्दू कितनी अच्छी है या खराब है। सभी प्रादेशिक भाषाओं में जिस प्रकार अच्छा साहित्य होता है उसी प्रकार उसमें भी वह है मुसलमानों की एक-पन्थीय या प्रादेशिक भाषा के रूप में अन्य प्रादेशिक भाषाओं के समान वह सुख से चलती रहे। पर, यहाँ पर प्रश्न केवल इतना ही है कि हिन्दुस्थान की राष्ट्र-भाषा होने में भर वह उर्दू सर्वथा अयोग्य, अराष्ट्रीय, अप्रगत एवं मूलतः दरिद्री है क्योंकि, वह जिस पर अवलम्बित है वह अरवी तो संस्कृत भाषा की तुलना में पासंग बराबर भी नहीं है उसकी अलेप्बेते की लिपि नागरी के मान से सीखने में, पढ़ने में, छापने में सर्वथा अनाड़ी एवं रद्दी है।

मुसलमानों की हठधर्मी ?

मुसलमान हिन्दी भाषा एवं नागरी लिपि को केवल इसीलिए नहीं चाहते हैं कि वह हिन्दुओं के संस्कृति की द्योतक हैं, और इसीलिए मुसलमानी संस्कृति की द्योतक अरवीनिष्ठ उर्दू भाषा एवं उर्दू लिपि का त्याग करने के लिए मुसलमान कभी भी तत्पर न होंगे। यह वास्तविकता है। प्रश्न यह नहीं है कि राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त करने के लिये योग्य तथा सुलभ भाषा कौनसी है—इस प्रकार प्रश्न भाषिक चर्चा का नहीं है तो प्रश्न है दो भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष का। अतएव इस वास्तविकता को हम जितने शीघ्र समझ जायेंगे उतना ही समय एवं शक्ति का वह अपव्यय जो मुसलमानों से भाषिक चर्चा कर उनके हृदय-परिवर्तन हेतु होने का है, न होगा। मुसलमान उनके लिये भर उर्दू रखें, हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं, बाद का कोई प्रश्न नहीं, पर उस उर्दू भाषा एवं लिपि को हिन्दुओं पर बलात् लादने का एवं उसे ही राष्ट्रभाषा बना के छोड़ने का उनका जो दुराग्रह है उसे विफल बनाना ही चाहिए।

यह लीजिये मुस्लिम वहुसंख्या वाले उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रदेश का उदाहरण, वहाँ मुसलमानों के सत्तासीन होते ही यच्चयावत पाठ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शालाओं में हिन्दी तथा गुरुमुखी का अध्ययन-अध्यापन निषिद्ध कर दिया गया। वैदिक एवं सिक्ख इन दोनों पन्थों के हिन्दू बालकों को उर्दू भाषा का अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया। शासकीय कार्य भी उसी में करने का निर्णय हुआ तथा जब यह प्रस्ताव विधान-सभा में आया था तब हिन्दू-सिक्ख एवं सिक्खेतर दोनों ने दो बार उक्त प्रस्ताव के निषेधस्वरूप विधान सभा से बहिर्गमन किया, पर उसकी किसी ने चिन्ता न की। राष्ट्रसभा एवं गांधीगुट भी सम्भवतः इसी कारण से उनके उक्त निर्णय का निषेध करने की कल्पना तक भी नहीं करते कि उक्त प्रदेश में मुसलमान बहुसंख्या में हैं अतएव उनके प्रदेश में उनकी उर्दू भाषा को एवं उर्दू लिपि को राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्र-लिपि मानना उचित ही है। परन्तु, फिर उसी न्यायनियम से निज़ाम के राज्य में हिन्दू बहुसंख्यक होने पर भी वहाँ की शिक्षण-संस्थाओं में हिन्दुओं को अनिवार्य रूप से उर्दू का ही अध्ययन करने के लिए जो बाध्य किया गया है, उसका निषेध तो इस गांधीगुट को करना चाहिए था।

पर इसके विपरीत, नागपुर में निज़ाम के निषेध का प्रस्ताव जब मराठीभाषियों ने प्रस्तुत किया तो इसी गांधीगुट ने उसे दबा दिया। कश्मीर में मुस्लिम बहुसंख्या होने के कारण वहाँ के हिन्दू राजा को उस राज्य का त्याग करना चाहिये ऐसी मुँहदेखी बात करने वाले गांधीजी उसी न्यायनियम से 'निज़ाम एवं भोपाल के मुस्लिम नवाबों को चाहिये कि वे उनके हिन्दू-बहुसंख्यक राज्यों को त्याग दें' यह बात कहने का साहस नहीं करते; प्रत्युत भोपाल राज्य तो रामराज्य है, ऐसा बेधड़क झूठा एवं कुत्सित बहाना बनाने में गांधीजी को जिस प्रकार संकोच नहीं हुआ वैसे ही यह बात है।

एक संस्मरणीय भाषण ?

उत्तर-पश्चिमी प्रदेश में हिन्दी को निषिद्ध करने के प्रस्ताव पर बोलते हुए एक-एक हिन्दू सदस्य ने मुसलमानों से कहा, 'आप लोगों को इस बात का विचार करना चाहिए कि जब आप अपने प्रदेश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुस्लिम बहुसंख्या होने के आधार पर उर्दू को ही राष्ट्रभाषा बनाने की और हिन्दू बालकों को अनिवार्य रूप से उसके अध्ययन की बात करेंगे तो जिन प्रदेशों में हिन्दू बहुसंख्या में हैं वहाँ पर वे उर्दू भाषा अध्ययन निषिद्ध कर देंगे और मुस्लिम बालकों को हिन्दी का अध्ययन करने को बाध्य करेंगे ?' हिन्दू सदस्यों की उक्त धमकी का उत्तर एक मुस्लिम सदस्य ने इस प्रकार दिया, 'जिन प्रदेशों में हिन्दू बहुसंख्या में हैं उन प्रदेशों की पाटशालाओं में भी उर्दू को निषिद्ध करने का साहस हिन्दू नहीं कर सकते ? हिन्दी को निषिद्ध करने का साहस मुस्लिमों में है, पर उर्दू को निषिद्ध करने का साहस हिन्दुओं में नहीं है ?' उस मुस्लिम नेता का यह मनोगत प्रत्येक हिन्दू को अपने हृदयपटल पर अंकित कर रखना चाहिए। यही तो है बीमारी की जड़ ? उक्त मुस्लिम नेता के वचन कटु अवश्य हैं पर हैं वे पूर्णतः सत्य ? उसका प्रमाण भी बिहार में त्वरित ही मिला ? बिहार में अस्सी प्रतिशत से अधिक हिन्दू हैं, ऐसी अवस्था में भी मुस्लिमों ने प्रस्ताव रखा कि शासकीय कार्य उर्दू भाषा एवं लिपि में ही होना चाहिये, और मुसलमानों के रुष्ट हो जाने के भय से हिन्दुओं ने उसका कोई विरोध नहीं किया ? वही अवस्था बंगाल की भी हो रही है ?

बंगाल में उर्दू का विद्रोह

इधर कुछ अधपगले लोग भाषा-शुद्धि का विरोध करने की धुन में ऐसा लिख देते हैं कि 'मुस्लिम जनता उर्दू का आक्रमण कर रही है यह बात ही असत्य है, उधर बंगाल में देखिये, समस्त बंगाली-मुस्लिम बंगला भाषा को ही अपनी मातृभाषा मानते हैं ।' उन्हें तो अभी भी इस बात का पता ही नहीं कि खिलाफ़त आन्दोलन से उर्दू को बंगाल के बहुसंख्य मुसलमानों की भाषा बनाने का कितना प्रबल आन्दोलन चल पड़ा है ? ढाका विश्वविद्यालय में मुसलमानों ने यह विवाद छेड़ दिया है कि बंगाली 'पाठ्य पुस्तकों में होने वाले बंगाली' बहुसंख्यक शब्द उर्दू के ही होने चाहिये, तथा वैसी पाठ्य पुस्तकें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित भी हो रही हैं ? 'इतिहास' शब्द नहीं 'तवारिख' चाहिये। 'विकास' नहीं 'तरक्की' चाहिए 'देश, राष्ट्र, पुष्कल,' ऐसे सरल शब्दों को बदलकर 'मुल्क, कौम, निहायत, चाहिए ? शब्दों को तो छोड़िये पर उसके आगे बढ़कर उनके अर्थों को भी विवाद का विषय बना दिया गया है। कवीन्द्र रवीन्द्र के साहित्य पर मुस्लिमों के आघात हो रहे हैं, उपमाएँ भी मुस्लिम संस्कृति को चाहिए। 'भीम के समान बलवान' ऐसा ही सदा क्यों कहते हो, 'रुस्तम के समान बलवान' कहो। विक्रम-चन्द्रगुप्त के ही पाठ क्यों पढ़ाते हो ? स्पेन-विजेता तारीक के पाठ पढ़ाओ। गत माह कलकत्ता विश्वविद्यालय का महोत्सव हुआ, राष्ट्रगीत-वन्देमातरम् का गान प्रारम्भ होते ही मुस्लिम छात्रों ने हुल्लड़ की ? विद्या की अधिष्ठात्री देवता सरस्वती ध्वज विचित्र थी—मूर्तिपूजा ? 'बुतपरस्ती' ? कहकर हो-हल्ला मचा कर उक्त चित्र एवं ध्वज को निकाल देने की हठधर्मी उन्होंने की ?

भूषण कवि पर संकट

समूचे बंगला साहित्य पर मुसलमानी संस्कृति की छाप मारने में उद्युक्त बंगाली मुसलमानों को उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के हिन्दुओं की यह माँग भर असह्य होती है कि उनके प्रदेश में कम-से-कम हिन्दुओं के लिए तो हिन्दू संस्कृति का प्रभाव रहने दिया जाये ? हिन्दू बहुसंख्यक भोपाल तथा हैदराबाद राज्यों की पाठशालाओं में हिन्दू बालकों को भी उर्दू भाषा एवं उर्दू लिपि ही पढ़ाई जाती है ? एक ओर मुसलमानों का यह दुराग्रह देखिये और दूसरी ओर देखिये कुछ हिन्दुओं का परानुकूलता का एवं भीरुता का स्वभाव। किसी एक मुसलमान ने गांधीजी को पत्र लिखा कि, 'भूषण' की कविताओं में मुसलमानों की निन्दा की गई है इस पर गांधीजी ने क्या किया भूषण का काव्य पढ़ा ? नहीं ? वे ही कहते हैं, मैंने भूषण को नहीं पढ़ा ? वे शिवाजी की जीवनी से भी परिचित न थे पर उक्त विषय में स्वयं का हास्यास्पद अज्ञान होने वाले गांधीजी उस एक मुसलमान द्वारा लिखित पत्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार पर भूषण जैसे महान् कवि के प्रसिद्ध काव्य को निषिद्ध ठहराते हैं और हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में उसके उद्धरण न दिये जायें ऐसा फतवा छोड़ते हैं ? इन्दौर हिन्दू राज्य, हिन्दू बहुसंख्यक पर वहाँ का शासकीय, न्यायालयीय आदि सभी कार्य आज भी उर्दू भाषा एवं लिपि में होता है ?

झूठी शेखी

एक ओर स्वत: के शब्दों का हनन कर दूसरी ओर मराठी एवं हिन्दी में घुसे हुए उर्दू शब्दों को अपने मानहानि का द्योतक न समझते हुए उसके विपरीत स्वत: की वीरता का विजयध्वज मानने की शेखी हिन्दू लेखक ही जो बघारते हैं वह सर्वाधिक दुर्बल एवं मूर्ख तर्क है। नीचे गिरे तो क्या टांग ऊपर ही है, वाली निर्लज्जता है ? वास्तव में कबूल, हाजिर, कायदा आदि शब्द जो हमारे शब्दों का हनन कर हमारी भाषा में घुसे हुए हैं, वे अपनी तत्कालीन पराजय के शेष अवशेष भर हैं। हमारा कर्तव्य तो यह है कि उन पराजय के स्मारकों को नष्ट करें, पर उर्दू शब्दों के बहिष्कार की बात करते ही मुसलमानों के रुष्ट हो जाने का भय खाये हुए लोग उन शब्दों को बहिष्कृत करने में हिचकिचाते हैं और अपनी वह भीरुता ऐसे मूर्ख तर्कों की आढ़ में छिपाने का प्रयास करते हैं कि हमारी भाषा में घुसे हुए मुसलमानी शब्द तो हमारे द्वारा विजित मुसलमान बन्दी हैं, मुसलमानों पर प्राप्त किये हमारे विजय के द्योतक हैं, शत्रु से छीने हुए शत्रुनिशान हैं ? ऐसे उन उर्दू शब्दों का प्रयोग करना स्वाभिमान का द्योतक है ? यदि इसे उचित माना जाये, तो फिर अपनी माँ, भाई, बहिन, पत्नी इन शब्दों के स्थान पर शिक्षित जनों द्वारा संवाद में आज 'मेरी माँ सिक है, वाइफ़ मायके गई है, घर में कुक करने वाली कोई नहीं है,' ऐसी अंग्रेजी शब्दों की भरमार से भ्रष्ट बटलरी भाषा का जो लोग प्रयोग करते हैं, वे सब चटोरे लोग अंग्रेजी भाषा पर भी मानो बड़े दिग्विजय ही कर रहे हैं ? क्योंकि वे लोग इन शब्दों को विजित कर हिन्दी में ला रहे हैं। हमारा नाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजी भाषा पर चढ़ाई कर 'हेअर कटिंग सेलून' को जीतकर लाता है, तो हमारा धोबी 'वाशिंग कम्पनी' को जीतता है। अंग्रेजों के राजकीय प्रभुत्व के कारण धूम मचाने वाली हमारी दासवृत्ति के ये प्रतीक हैं, अंग्रेजी भाषा की हिन्दी मराठी पर होने वाली यह मात है, या हिन्दी मराठी द्वारा अंग्रेजी भाषा से छीने हुए ये ध्वज हैं?

इतिहास के उदाहरण

जो बात अंग्रेजी के सम्बन्ध में है, वही बात मुस्लिम प्रभुत्व काल में बलवती बने उर्दू शब्दों के सम्बन्ध में भी है। पूना (महाराष्ट्र) के समस्त मुहल्लों के नाम मुसलमानी थे। अग्निकाण्ड में जलने के उपरान्त पेशवा ने जब इसे पुनः बसाया तो उन्होंने पूना के मुहल्लों के शुक्रवार, शनिवार आदि स्वकीय नाम रखे, यह क्या श्रीमन्त पेशवा की पराजय हुई? यदि वे मुस्लिम नाम उन मुहल्लों के रहते तो क्या वे मरहठों के विजय-चिह्न माने जाते? जब औरंगजेब ने सिंहगढ़ पर विजय प्राप्त की तब उसने 'बक्षिन्दाबक्ष' यह उसका नाम रखा। मरहठों ने केवल उस किले पर ही विजय प्राप्त नहीं की तो उन्होंने उसका वह मुसलमानी नाम भी हटाकर उसे 'सिंहगढ़' यह नाम दिया जो आज भी प्रयोग में आता है—इसे क्या मराठी की पराजय कहा जाये? यदि आज भी सिंहगढ़ के लिए 'बक्षिन्दाबक्ष' यही नाम रूढ़ होता तो क्या वह मुस्लिमों से विजित विजयध्वज माना जाता? कागज़-पत्रों में मुसलमानों ने 'नासिक' को 'गुलशनाबाद,' 'काशी-नालन्दा' को इस्लामाबाद आदि नाम लिखे हैं—हिन्दुओं ने उन्हें नहीं माना—नासिक, काशी, प्रयाग ये स्वकीय नाम ही उन्होंने जीवित रखे—तो क्या इसे हिन्दू संस्कृति की पराजय माना जाये? और इसके विपरीत मुसलमानों ने 'देवगिरी' को 'दौलताबाद' यह जो नाम दिया, वह आज भी वैसा ही प्रचलित है—क्या इसे हिन्दू-संस्कृति की विजय माना जाये? 'दौलताबाद' यह नाम मुसलमानों की भाषिक विजय का स्मारक है या हिन्दुओं की! 'दौलताबाद' का परित्याग कर, आज हम यदि उसे 'देवगिरी' कहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगें तो क्या उसे हिन्दू भाषा का अपमान माना जाये ? 'दौलताबाद' शब्द के प्रयोग से 'देवगिरी' शब्द की पराजय हुई है यह भी क्या कोई सिद्ध करने लायक गूढ़ प्रश्न है ? वर्तमान में प्रचलित 'हाजिर, सिवाय,' इन मुस्लिम शब्दों का परित्याग कर 'उपस्थित, विना,' इन शब्दों का यदि हम प्रयोग करें तो क्या हिन्दी भाषा की एवं उसके विजय की अवहेलना होगी ? छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा प्रतिपादित 'म्लेच्छ शब्द बहिष्कार' की प्रवृत्ति से सैकड़ों उर्दू शब्द मराठी भाषा से निकाल दिये गये—तो क्या छत्रपति शिवाजी आदि ने मराठी भाषा को मुस्लिमों के हाथों सौंपकर पराजित करवा डाला, ऐसा माना जाये ? इसके विपरीत सिन्ध के हिन्दू स्वयं की लिपि भी सम्हाल नहीं सके। हम हिन्दुओं के रामायण-महाभारत आदि धर्मग्रन्थ ही नहीं तो गायत्रीमन्त्र को भी यदि सिन्धी में मुद्रित करना हो तो उसे उर्दू लिपि में दायें से बायें इसी प्रकार मुद्रित करना पड़ता है—तो क्या इसका अर्थ यह लगाया जाये कि सिन्ध के हिन्दुओं ने मुसलमानों की उर्दू लिपि की पराजय कर उस पर अधिकार किया ? और क्या इसे सिन्ध के हिन्दुओं द्वारा मुस्लिमों पर प्राप्त प्रचण्ड सांस्कृतिक विजय का ध्वज माना जाये ? दास्यविकृत मनोवृत्ति का यह कितना विचित्र उदाहरण है ? इसे ही तो कहते हैं, उलटी खोपड़ी ?

चर्चा का सारांश

(अ) एक ओर उर्दू को ही राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रलिपि बनाकर उसे हिन्दुओं पर बलात् लादने का मुसलमानों का दुराग्रह और दूसरी ओर मुसलमान रुष्ट हो जायेंगे इस भय से एवं मूलतः ही होने वाली परानुकूलता की प्रवृत्ति के कारण उर्दू को प्रकट एवं प्रखर विरोध न करने की कुछ हिन्दुओं की भीरु नीति—इन बातों से, निश्चय ही, उर्दू सारे हिन्दुस्थान में बढ़ी-चढ़ी बन बैठेगी। कश्मीर, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रदेश, पंजाब, सिन्ध, बंगाल, भोपाल, हैदराबाद, बिहार आदि अनेक प्रदेशों में उर्दू भाषा एवं लिपि ही राष्ट्रभाषा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिपि बन बैठेगी। जहाँ तक शासकीय कार्य का प्रश्न है, उपर्युक्त प्रदेशों में साधारणतः सबदूर वह उर्दू में ही हो रहा है। अतएव, यदि हिन्दू उर्दू का प्रखर विरोध नहीं करते हैं तो मुस्लिमों की प्रखरता की, कट्टरता की विजय निश्चित ही है।

(आ) हिन्दी नागरी को राष्ट्रभाषा-लिपि स्वीकार करने में मुसलमानों का यह जो तीव्र विरोध है उसकी जड़ में केवल भाषिक प्रश्न ही नहीं है। उन्हें तो हिन्दुस्थान में पाकिस्तान बनाना है अतः उर्दू को राष्ट्रभाषा-लिपि बनाकर मुस्लिम संस्कृति को बढ़ी-चढ़ी एवं हिन्दू संस्कृति को पराजित करना यह उसी ध्येयधुन के अनुसार, उनका एक आनुषंगिक एवं अपरिहार्य कार्यक्रम है। दो विरुद्ध संस्कृतियों का यह संघर्ष है। ऐसी अवस्था में 'इधर तो आइये, हम उर्दू के सौ-पचास शब्दों को हिन्दी में समाविष्ट कर रहे हैं? ऐसी कठवैदी औसधी से थोड़े ही काम बनने वाला है? केवल 'हिन्दी याने हिन्दुस्थानी' कहने से काम नहीं चलेगा?

(इ) एतदर्थ, हिन्दुओं को चाहिए कि वे इस संघर्ष के हेतु प्रकट रूप से एवं पूर्णता से सिद्ध हो जायें। एकता के बावले लोगों ने भी यह बात तो स्वीकार कर ही ली है कि जहाँ तक लिपि का सम्बन्ध है एक विचार होना कदापि सम्भव नहीं है। इस पराजय को स्वीकार कर, अब वे यह मानकर चलते हैं कि नागरी एवं उर्दू ये दो लिपियाँ तो रहेंगी ही, अतः हिन्दी भाषिकों के लिए नागरी को राष्ट्र-लिपि बनाने के प्रयास वे कर रहे हैं। उनकी यही नीति इष्ट एवं सफल होने लायक है। राष्ट्रभाषा के प्रश्न को भी अब इसी नीति से उन्हें सुलझाना चाहिए। मुसलमान बड़े शौक से उर्दू को उनकी भाषा बनाये रख सकते हैं, पर हम हिन्दुओं को यह घोषित कर देना चाहिए कि हम हिन्दुओं की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही रहेगी, और इस प्रकार भाषा के प्रश्न को हम हिन्दू पुरता ही सुलझायेंगे। मुसलमानों की चापलूसी करने का अब कोई कारण नहीं है। इस हिन्दुस्थान में, बहुसंख्य जनता बाईस करोड़ हिन्दू हैं—उनकी हिन्दी भाषा ही राष्ट्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा है । बहुसंख्यकों से भाषिक व्यवहार करने की आवश्यकता अल्पसंख्यकों को ही विशेष रूप से होती है, अतः उन्हें ही एकता के हेतु चिन्तित होना चाहिए । वह एकता भी हम पर उपकार करने के लिए नहीं, तो यदि वे वैसी एकता चाहते हों तो उसके लिए प्रयास करें। 'आओगे तो तुम्हारे साथ, नहीं आओगे तो तुम्हारे बिना एवं विरोध करोगे तो तुम्हारे विरुद्ध भी डटकर के हिन्दूराष्ट्र अपना भवितव्य जैसे भी सम्भव हो वैसे ही बनायेगा !' 'हिन्दू-मुस्लिम एकता के सभी क्षेत्रों में लागू होने वाला इस प्रकार का यह सूत्र है ।' अर्थात् भाषा के क्षेत्र में भी यही सूत्र लागू है । जब तक बहुसंख्यक हिन्दू एकता के उद्देश्य से अल्पसंख्यक मुसलमानों के पैर पड़ते हैं, तब तक हिन्दुस्थान को पाकिस्तान बनाने के एकमेव बन्धन पर ही मुसलमानों का एकता के लिए हाँ भरना सम्भव हो सकता है । भाषिक प्रश्न के सम्बन्ध में भी यही प्रकट एवं अपरिहार्य वास्तविकता है ।

(ई) जब हिन्दुओं की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है, यह निश्चित किया जाएगा, और मुसलमानों की सम्मति का भारी लंगर जो राष्ट्र-भाषा के गले में आज अटकाया जा रहा है उसे तोड़ दिया जाएगा तब सारी झंझटें एकदम समाप्त हो जाएँगी । हम हिन्दुओं की राष्ट्रभाषा जो हिन्दी है, उसके विश्वविद्यालयों पर, हम हिन्दुओं की संस्कृति की अधिष्ठात्री देवता-सरस्वती है उसी का ध्वज निःसंकोच रूप से एवं निर्मुक्तता से फड़कता रहेगा । संस्कृत शब्दरत्नाकर से आवश्यक नव-नवीन पारिभाषिक शब्द उसे अनिरुद्धता से प्राप्त होते रहेंगे । उसका स्वतः का विकास भी उसकी रुचि के अनुसार, उसे शोभा दे ऐसे ही, सुश्रीक एवं सुश्लिष्ट प्रमाण में होने लगेगा । हमारी हिन्दू-संस्कृति के हृदगत को वह निर्भयता से प्रकट करने लगेगी । वह सरस्वती-अधिष्ठित ध्वज यदि मुसलमानों को अच्छा न लगे, तो वे अपने उर्दू विश्वविद्यालय अलग से स्थापित करें । उर्दू एवं हिन्दी के पैर एक-दूसरे में उलझाने से दोनों की ही प्रगति अवरुद्ध होती है, झंझटें होती हैं । अब तो, यदि मुमलमान कहें भी तो भी 'हिन्दी याने हिन्दुस्थानी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बला हमें नहीं चाहिए ।

(उ) वही भाषा राष्ट्रभाषा का स्थान पा सकती है जो बहुसंख्यकों के लिए सुलभ तथा अनुकूल हो—इसीलिए बहुसंख्यक हिन्दुओं के हिन्दुस्थान में जो भाषा संस्कृतनिष्ठ होगी वही राष्ट्रभाषा के स्थान को सहज ही प्राप्त होगी । इसीलिए वह हिन्दी भाषा जितनी संस्कृतनिष्ठ होगी उतना ही उसका राष्ट्र-भाषाक्षमत्व अधिक हो होगा । अतएव हिन्दी प्रदेशों में भाषा-शुद्धि पर गर्व रखने वाला जो पक्ष है उसे चाहिए कि वह अब हिन्दी को पूर्णतः संस्कृतनिष्ठ बनाने का और गतकालीन मुस्लिम वर्चस्व के द्योतक होने वाले उर्दू शब्दों को कंकड़ के समान बीन-बीनकर निकाल फेंकने के बहिष्कार आन्दोलन का प्रकट निश्चय करें और एक भी अनावश्यक अंग्रेज़ी या उर्दू शब्द हिन्दी में प्रयुक्त न होने दें । ऐसी दृढ़ता से डटे रहे बिना हम विदेशियों के इस भाषायी आक्रमण को रस्साकशी के प्रस्तुत दांव को जीत नहीं सकते । इसके विपरीत उर्दू में सथासम्भव अरबी, तुर्की, अंग्रेजी आदि पचासों भाषाओं की खिचड़ी मुसलमान आज जो पका रहे हैं वह उन्हें जितना हितकर दिखाई दे रहा है उतना ही हमारे लिए भी अनायास ही हितकर है—क्योंकि, उर्दू में अरबी आदि हिन्दुओं के लिए अपरिचित एवं उद्वेगजनक शब्द जितने प्रमाण में अधिक होते जायेंगे उतनी ही बहुसंख्यक हिन्दुओं के लिये वह उर्दू अधिक दुर्बोध एवं अप्रिय बनती जाएगी, जिसके परिणामस्वरूप बंगाल से लेकर मद्रास तक की सामान्य जनता स्वतः होकर उर्दू के राष्ट्र-भाषा बनाने का विरोध करेगी और तुलनात्मक रूप में हिन्दी ही उन्हें निकटस्थ, स्वकीय एवं सरल प्रतीत होगी ।

उपर्युक्त समस्त कारणों से इस राष्ट्रीय लिपि का प्रश्न सुलझाने का इष्टतम एवं एकमेव मार्ग यह है कि प्रत्येक हिन्दू प्रकट रूप से तथा निर्भयता से यह प्रतिज्ञा करे—

'संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही हम हिन्दुओं की राष्ट्रभाषा है एवं संस्कृतनिष्ठ नागरी लिपि ही हम हिन्दुओं की राष्ट्रलिपि है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहो—छूऊंगा ? स्वीकार करूंगा ??

कहो—छूऊंगा ?

अछूतोद्धार का ही प्रश्न लीजिये, ये सात करोड़ हिन्दू अपने रक्त के, धर्म के, राष्ट्र के बन्धु, पर उन्हें हम उतना भी नहीं अपनाते, उतना भी हमारे घरों में प्रवेश करने नहीं देते, जितना उस अब्दुल रशीद, उस औरंगज़ेब, पूर्व बंगाल में हिन्दुओं का संहार करने वाले उन विधर्मी धर्मोन्मत्त मुसलमानों को अपनाते हैं, उन्हें हमारे घरों में प्रवेश करने देते हैं। जब वे धर्मशत्रु आपके घर पर आते हैं तब 'आइये साहब' कह कर उनका स्वागत कर आप उन्हें अपने पास गद्दे पर बिठाते हैं। पर इन अछूत हिन्दुओं का कोई सन्त, सौम्य, सरलहृदयी, काशी का तीर्थ-यात्री सुस्नात होकर भी यदि हमारे द्वार पर आये तो हम उसका स्वागत न करेंगे, उसकी परछाईं भी हम पर पड़ने न देंगे ? ये सात करोड़ लोग ठीक हम ही मानव हैं, हम कुत्ते-बिल्ली जैसे गन्दे प्राणियों को, गाय-भैंस जैसे पशुओं को छू सकते हैं, पर उनको भर कदापि छू नहीं सकते ? परिणामस्वरूप यह सात करोड़ की हिन्दू-जनशक्ति हमारे पक्ष में होकर भी नहीं होने जैसी स्थिति में ही है—इतना ही नहीं तो यह शक्ति इससे भी अधिक भयंकर संकट हम पर लाने वाली शक्ति सिद्ध होगी—क्योंकि उनका जो अमानवीय बहिष्कार हमने किया उससे वे हमारे लिये उपयोगी तो नहीं रहते, प्रत्युत शत्रु के लिये भर हमारे घर में फूट डालने का सुलभ साधन बन हमारी अपरिमित हानि करने वाले भर अवश्य हो जाते हैं ? इसलिये—और 'विशेषकर न्याय के लिये' यदि इनके मनुष्यता के अधिकार 'हम स्वतः होकर उन्हें दे देंगे तो हिन्दू समाज पर आघात करने हेतु विधर्मियों ने उठाई हुई भ्रष्टीकरण की तलवार की धार आधे से अधिक कुन्द हो जाएगी। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर आधे अछूतों को हम लेते हैं ऐसा कहने वाली अली की जिह्वा, और सारे अछूत हमारे ही हैं ऐसा अधिकार बताने वाले निज़ामी और सिन्धी मौलवियों की धृष्टता जहाँ के तहाँ लूली पड़ जाएगी। ईसाइयों के आधे से अधिक मिशन खाली हो जाएँगे, और इन अत्यन्त दूरगामी परिणाम देने वाले समस्त महत्कार्यों को करने के लिये क्या कारागार में जाना पड़ेगा ? कदापि नहीं। फाँसी ? अजी उसका तो नाम भी न लो। क्या कुछ लाख रुपये की निधि संग्रहित करनी होगी ? नहीं। कौड़ी का व्यय नहीं, एक दिन के लिये भी कारागार में जाने की बात नहीं—केवल इच्छा भर हो तो यह महत्कार्य आप ही आप हो जाएगा। केवल मन ही मन निश्चय करो 'मैं बसोड़ को छूऊँगा !' बस, इस एकमात्र उच्चारण के साथ ही स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या का भयंकर प्रतिशोध आधे प्रमाण में तो आप ले ही सकेंगे। कुत्ते को छूते हो, साँप को दूध पिलाते हो, चूहे का रक्त सदा ही पीने वाली बिल्ली को थाली में मुँह डालने देते हो—तो, ये तो हिन्दू ही हैं ! इस मानव समान मानव को, ये आपके ही राम की पूजा करने वाले आपके देशबन्धु को 'आपके इस बसोड़ को' छूने में आपको इतनी लज्जा क्यों आती है ? छोड़ दो उस लज्जा को, उस लज्जा की ही लज्जा आपको आने दो और स्वामी श्रद्धानन्दजी के हृदय को चीरकर पार होने वाली उस हत्यारे की गोली के साथ बाहर उड़ने वाली उस रुधिरधारा की सौगन्ध खाकर कहो कि, 'मैं छूऊँगा, मैं बसोड़ को छूऊँगा—कम से कम सामाजिक कार्य में तो मैं अछूत को मेरे पास बैठने दूँगा।'

बस, आप इतनी-सी इच्छा भर कर लो, केवल हाथ आगे बढ़ाकर बसोड़ को स्पर्श कर लो, तो यह छुआछूत की इतनी अत्यन्त महत्त्व की समस्या झट से सुलझ जायेगी। पाठशालाओं में, स्थानिक स्वशासन संस्थाओं में, सभाओं में, सार्वजनिक मार्गों पर अछूत हिन्दू को केवल छू भर लो कि, उससे स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या का प्रतिशोध लिया ही गया समझो ? इतना महान् कार्य और उसे सिद्ध करने का इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल उपाय ?

तो चलो कहो, 'छूऊंगा ? मैं, जो शत्रु के सम्मुख 'आइये साहब ! आइये महाराज !' कहकर चापलूसी करने में लज्जित नहीं होता, वही मैं मेरे हिन्दू बन्धुओं को छूने में लज्जित न होऊँगा। अभी, इसी क्षण उठकर मेरे उन बसोड़ चमारादि हीन-दीन हिन्दू बन्धुओं की पीठ पर प्रेम से हाथ फेरूंगा। फिर आकाश से वज्र भी यदि मुझ पर आ पड़ें तो भी मुझे कोई चिन्ता नहीं ?'

बस, इतना निश्चय कर आप घर से निकलो और उस हीन-दीन हिन्दू बन्धु के पीठ पर प्रेमभरा हाथ फेर दो, बस उस एक हाथ के फेरने से इस हिन्दू जाति का सम्पूर्ण भाग्य आप परिणामकारक रूप से परिवर्तित कर सकोगे और इस सत्कृत्य के लिये आप पर आकाश से व्रत तो नहीं पारिजात के पुष्पों की वृष्टि होगी।

कहो—स्वीकार करूँगा ?

जिस बात को हमने अभी देखा है, वही बात हमारे संघटनात्मक कार्य के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उप-अंग के सम्बन्ध में भी दिखाई देती है। भूतकाल में छलबल से जिन लोगों को हमसे छीना गया है, उन अपने ही रक्त के, अपने ही राष्ट्र के, बन्धुओं को, जब वे प्रायश्चित्त लेकर अपने ही समाज के संयुक्त-परिवार में—अपने पूर्वार्जित घर में वापस आते हैं, तब उन्हें ममता से अपनाना यही वह दूसरा उप-अंग है। यही वह शुद्धि है, जिसके लिये स्वामी श्रद्धानन्दजी मारे गये हैं। यही वह शुद्धि है कि, जिसके अपनाने से मुसलमान, ईसाई आदि विशेष विधर्मियों का भ्रष्टीकरण का व्यवसाय ठप्प ही हो जाता है। यही वह शुद्धि है, कि जिसके हित प्रारम्भ हुए 'आन्दोलन के द्वारा गत दस-बीस वर्षों में लाखों लोग हिन्दू समाज में एवं राष्ट्र में पुनः समाविष्ट किये जा चुके हैं।' हिन्दू समाज से प्रतिवर्ष लाखों लोग छीनने का यह क्रम गत हजार वर्ष से अविरत रूप से चल रहा है—हमारी राष्ट्रमाता के लाखों पुत्र इस भ्रष्टीकरण की महामारी पर बलि चढ़ते रहे हैं, पर उसमें से एक को भी उस रोग से बचाकर वापस अपने घर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ला सकें ऐसी औषधि आज तक प्राप्त नहीं हुई थी। परन्तु प्रतिवर्ष लाखों जीवों का संहार करने वाली भ्रष्टीकरण की महामारी पर एक रामबाण औषधि अब भर प्राप्त हो चुकी है और वह है 'शुद्धि'। यह संजीवनी हमारी हिन्दू जाति की देवसेना के किसी भी सैनिक को भ्रष्टीकरण के बाण से यथासम्भव विद्ध न होने देते हुए, पूर्व में प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में होने वाले संहार को टालती है। इतना ही नहीं, तो पूर्व में संहारित अपने ही उन धर्ममृत सैनिकों के लाखों शवों को प्रतिवर्ष पुनर्जीवित कर रही है, इसलिये तो इस सवाई संजीवनी की विद्या को देवगुरुपुत्र कच के सामन स्वामी श्रद्धानन्द जब से देवशिविर में लाये हैं तब से विधर्मियों के पेट में हाय समायी—वे चकरा गये हैं। स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या क्यों की गई ? शुद्धि की हत्या करने के लिये ? यदि स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या का उचित प्रति-शोध लेना हो तो, स्वामी श्रद्धानन्दजी तो मर गये पर शुद्धि भर नहीं मरी, यही सिद्ध करना होगा।

और इसे सिद्ध करने के लिये, ऐ मेरे हिन्दू बन्धुओ, आपको कुछ विशेष कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं। जो लोग प्रामाणिकता से परावर्तित होकर पुनः हिन्दूराष्ट्र में सम्मिलित होने की इच्छा रखते हैं उनको हमारे समाज में पुनर्प्रस्थापित कर, उससे ममता का व्यवहार करना, उन्हें अपना कहना, उन्हें अपनाना, उनका मनःपूर्वक स्वीकार करना, इतना ही पर्याप्त है। शुद्धि आन्दोलन के लिये द्रव्य एवं प्रयत्नों के वल की आवश्यकता प्रतीत होगी, उसे देने वाली संस्थाएँ बन चुकी हैं, बनेंगी भी। आपमें से ही कुछ राष्ट्रनिष्ठ प्रचारक एवं धुरंधर पुरुष वह कार्य कर रहे हैं। हम आप जैसे सामान्य लोगों को—प्रत्येक हिन्दूमात्र को उसकी विशेष चिन्ता नहीं करनी चाहिये। आप तो केवल इतना करो, केवल इतना निश्चय करो कि, मैं शुद्धिकृत हिन्दू को स्वीकार करूंगा ? बस मेरा प्रत्येक हिन्दू बन्धु से यही कहना है कि आप समाज में जहाँ कहीं भी रहो, इतना भर देखते रहो कि, अपने दृष्टिपथ में कहीं भी कोई हिन्दू विधर्मियों के चंगुल में तो नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फँस रहा है ? कोई हिन्दू स्त्री उसका, एक पग अनुचित दिशा में पड़ने पर पापभय से सिटपिटाकर अपनी हिन्दू सन्तान के साथ अनन्त पगों की फिसलन पर स्वतः ही गिरकर, फिसलकर धर्मान्तरण के नरक में तो नहीं गिर रही है ? यदि आपको कहीं ऐसा दिखाई दे तो त्वरित ही यह समाचार हिन्दू समाज को एवं हिन्दूसभा को सूचित करो। जो शुद्ध हो चुके हैं ? उनका हाथ एक पलभर के लिये क्यों न हो अपने हाथ में लेकर 'सब ठीक तो है न ?' इतना ममता से पूछो—संक्रान्ति पर्व पर, दशहरे पर, दीवाली पर उनसे भेंट कर राम-राम करो और फोकट का सोना-भुजरिया उन्हें दो—यदि उनका कोई उपहास करे तो उनका पक्ष लेकर केवल इतना ही कहो—"भूल किससे नहीं होती ? पापप्रवणता तो मनुष्य का स्वभाव है। 'प्रायश्चित्त तो मनुष्यधर्म है।' अपने पाप अन्धकार में होने के कारण, जिनके पाप प्रकाश में आ चुके हैं उनकी निःसीम निन्दा करना यही वास्तव में पतितावस्था है ? पतित ? जो हिन्दू पतितपावन के मन्दिर में पुनर्प्रवेश करता है वह पावन हो ही जाता है। वह मेरे समान ही रक्त के प्रत्येक बिन्दु से हिन्दू हो जाता है ?" ऐ, मेरे हिन्दूबन्धु, आप यदि इतना भी कर लो, तो अपने पुरता शुद्धिकर्त्तव्य आपने कर लिया ? इसके लिये द्रव्य की आवश्यकता नहीं—आवश्यकता है केवल प्रेम की। बम, मशीनगन्स, सेना, श्रमिक, प्रयास आदि किसी की भी आवश्यकता नहीं, केवल 'शुद्धिकृतों को मैं स्वीकार करूँगा' इतने शब्दों की आवश्यकता है।

एक बड़े ही प्रामाणिक शुद्धिकृत व्यक्ति से हमें एक पत्र प्राप्त हुआ है, उसमें वे लिखते हैं, "मेरे हिन्दू धर्म-प्रवेश से किसी भी प्रकार रुष्ट न होते हुए मिशनरियों ने मुझे संक्रान्ति पर्व पर मुँह मीठा करने हेतु परम्परानुसार तिल-गुड़ भेजा है। मेरे पुत्रों को दस-दस रुपये की मिठाई भेजी है, हमसे दूर होते हुए भी वे प्रति सप्ताह मेरा कुशलमंगल पूछते रहते हैं, इन सब बातों के रहस्य को मैं भली भाँति जानता हूँ; परन्तु जब वे उनकी धर्मध्वजा के नीचे लाने के उद्देश्य से विधर्मियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इतना मीठा बोल सकते हैं, तो हमारे हिन्दूधर्म की ध्वजा के नीचे जब हम सब खड़े हैं तब स्वजनों को परस्पर में एक दूसरे से तो मीठा बोलना चाहिये ! पर ! जब मैं और मेरे पुत्र रास्ते से जाते हैं, तब मेरे ये हिन्दूबन्धु मेरी ओर तिरस्कार से देखकर हँसते हैं और दूसरे रास्ते से चले जाते हैं। किसी के बरामदे में अभी भी हम बैठ नहीं सकते। तीज-त्यौहारों पर प्रेम से दो शब्द भी कोई नहीं बोलता। ऐसी अवस्था में केवल एक आत्मिक सन्तोष जो मुझे मेरे हिन्दू पूर्वजों के वास्तु में निवास करने से प्राप्त हो रहा है, के कारण ही विपक्ष के प्रलोभन एवं स्वपक्ष के तिरस्कार का कुछ भी नहीं लगता। 'मैं हिन्दू हूँ' इस भावना के सुख का उपभोग मैं कर सकता हूँ इतना ही मेरे लिए पर्याप्त है।"

तो अब बताओ कि शुद्धिकृतों की ये सामाजिक यातनाएँ दूर करना सर्वतः आपकी इच्छा पर और केवल आपकी इच्छा पर ही अवलम्बित नहीं है क्या ? उनका कुशलमंगल पूछने में, तीज-त्यौहारों पर अपने समाज में आने पर उन्हें अपनत्व का अनुभव हो इस प्रकार 'बैठिये' कहने में, संक्रान्ति पर्व पर थोड़ा-सा तिल-गुड़ उन्हें देकर 'मीठा बोलिये—सदा मधुर सम्बन्ध बनाये रखिये' ऐसा हँसमुख चेहरे से उनसे निवेदन करने में आपका कौड़ी का भी खर्च होगा क्या ? नहीं। केवल 'हमने आपका स्वीकार किया है।' ऐसा कहने मात्र से लाखों शुद्धिकृत आपके हो जाते हैं—जो करोड़ों की संख्या में आज भी पतित हैं वे भी 'शुद्धिकृतों का आप स्वीकार करते हो।' यह देख कर स्वतः ही निश्चित रूप से आपके पास आ जाएँगे।

इतना करना तो आपके हाथ में है न ! इसमें अंग्रेज आपके लिए बाधक नहीं, दरिद्रता बाधक नहीं, मृत्यु का भय बाधक नहीं, फाँसी बाधक नहीं, कुछ भी नहीं, तो केवल इतना कहो, 'मैं छूऊँगा—मैं स्वीकार करूँगा।' ऐ हिन्दूमात्र ! आप अकेले भी हो, जहाँ कहीं भी हो, वहाँ—दूसरे आगे बढ़ते हैं या नहीं इसकी प्रतीक्षा न करते हुए कहो कि, मैं मेरे करोड़ों अछूतों को छूऊँगा, मैं शुद्धिकृतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का स्वीकार करूँगा—फिर देखो 'अछूतोद्धार एवं शुद्धि' इन दोनों अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राष्ट्रकार्यों में सफलता अवश्य ही प्राप्त होगी !

तो कहो कि मैं अपना वह हाथ जो कुत्ते की पीठ पर से बड़े ही प्रेम से मैं फेरता हूँ, उसे अछूत माने गये मेरे हिन्दूधर्मियों की, मेरे रक्तबन्धुओं की, मेरे राष्ट्रबन्धुओं की पीठपर से भ्रातृप्रेम से फेरूँगा ! और फिर देखो, अस्पृश्यता तो मर ही जाएगी।

और यह निश्चय करो कि, मैं शुद्धिकृत हिन्दू को ममता से 'आप मेरे हो' ऐसा कहूँगा। कहो स्वीकार करूँगा ! और फिर देखो शुद्धि दृढ़मूल हो ही जाएगी !

इतना महँगा कर्त्तव्य, इतना सस्ता कभी भी नहीं हुआ, इसलिए इतना अवश्य करो, यह सर्वथा आपके हाथ की बात है ! कहो—छूऊँगा ! और स्वीकार करूँगा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्याबल भी एक शक्ति ही है !!

असाराणां हि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।
तृणैराबध्यते रज्जुस्तेन नागोपि बद्ध्यते ।।

हिन्दू संगठन पर किसी भी प्रकार कोई आक्षेप लगाकर उसका विरोध करने की चाट जिन्हें लगी है, उनमें से कुछ लोगों को जब यह दिखाई देता है कि अन्य आक्षेप अब पूर्णतः व्यर्थ हैं, तब वे अस्पृश्यता-निवारण एवं शुद्धि संगठन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने वाले इन दो उप अंगों पर ऐसा धूर्त आक्षेप लगाते हैं कि, "अजी अछूतों के भ्रष्ट होने से हिन्दू समाज की संख्या घटी या पतित-परावर्तन के शुद्धि-कार्य का स्वीकार न करने से हिन्दूसमाज वर्धित नहीं हुआ तो उससे क्या बिगड़ता है ? केवल संख्या में क्या धरा है ! हम जो थोड़े से लोग आज भी हिन्दू हैं, उनकी ही बहुत उन्नति करेंगे, मुट्ठी भर अंग्रेज आज संसार पर शासन कर रहे हैं । एतदर्थ वास्तव में देखा जाये तो शक्ति संख्या में न होकर समाज के व्यक्तियों में होने वाले तेजादिक गुणों में ही होती है । अतएव हिन्दू समाज के लोग विधर्म में जाते हैं इसलिये व्यर्थ में चिल्लाहट न मचाते हुए जो जाते हैं उन्हें प्रेम से जाने दो और फिर जो बचेंगे उनकी ही उन्नति करते रहो ।"

यहाँ तक तो इन आक्षेपकों की भाषा एक समान होती है, पर इसके उपरान्त उनमें से कुछ लोग अपने मुख थोड़े-से फेरकर अलग तूती बजाने लगते हैं । जो आक्षेपक 'पुराना सो सोना' ऐसा मानने वाले पुरानी रूढ़ियों के अन्धानुयायी होते हैं, वे कहते हैं "इस प्रकार हिन्दू-समाज की संख्या घट रही है । इस भय का भूत निरर्थक सिद्ध हो जाने के कारण और केवल संख्या में कुछ भी अर्थ न होने के कारण अस्पृश्यतानिवारण एवं शुद्धि के सम्बन्ध में नयी रूढ़ियां बनाने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झंझट में आप लोगों को नहीं पड़ना चाहिये। उपर्युक्त लोगों के 'संख्या में कोई अर्थ नहीं' इस सिद्धान्त पर से निकाला हुआ उप-सिद्धान्त कम से कम विसंगत तो नहीं होता है, परन्तु इस आक्षेप के सम्बन्ध में वे लोग, जो निजजीवन की अन्य बातों में रूढ़ियों को ताक में रखने में नहीं हिचकिचाते। इतना ही नहीं तो रामायण या महा-भारत ये ऐतिहासिक ग्रन्थ न होकर केवल आध्यात्मिक रूपक मात्र हैं, छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप आदि आधुनिक राष्ट्रपुरुष तो क्या पर राम और कृष्ण को भी—यदि मैं उनके समय में होता तो (और यदि वे वास्तव में देहधारी व्यक्ति होते तो भी) यह कहकर मैंने उन्हें दोष दिया होता कि, आपने रावण, कंस, अफ़जलखान आदि की हत्या की और शस्त्रधारण किया जो निश्चित ही हिंसात्मक एवं पापदायक हैं। 'ऐसा कहने वाले ये लोग जो पुरातन के, शास्त्रों के एवं रूढ़ियों के कट्टर विरोधी होते हैं, वे लोग 'संख्या में कोई अर्थ नहीं' इस सिद्धान्त के आधार से अस्पृश्यतानिवारण के विरुद्ध तो चुप्पी साधे रहते हैं, पर शुद्धि के विरोध में उक्त आक्षेप का बराबर उपयोग करते हैं और कहते हैं कि, 'अजी संख्या में क्या है, उन्हें जाने दो—उन्हें वापस लेने की व्यर्थ की झंझट उठाकर विधर्मियों के, विशेषतः मुसलमानों के हृदय को चोट क्यों पहुँचाते हो? यदि वे करते हैं तो उन्हें हिन्दुओं को भ्रष्ट करने दो। उनके भ्रष्टीकरण के सपाटे में से हम जो बचे हैं या बचेंगे, उनकी शारीरिक, मानसिक, आत्मिक आदि सभी प्रकार की उन्नति हम यदि कर लें, तो वह पर्याप्त है। केवल संख्या में क्या धरा है? वास्तविक शक्ति तो गुणों में है अतएव छोड़ दो उस शुद्धि को और उस संगठन को!'

आक्षेपकों के उपरिनिर्दिष्ट दो उपवर्गों में से एक उपवर्ग जो रूढ़ियों को अन्धानुयायी होने से अस्पृश्यता एवं शुद्धि इन दोनों आन्दोलनों के सम्बन्ध में आक्षेप लेता है, उसका वह आक्षेप कितना भी भ्रामक क्यों न हो, पर कम से कम सुसंगत तो होता है। परन्तु इस दूसरे उपवर्ग के द्वारा 'संख्याबल में कुछ भी अर्थ नहीं' यह आक्षेप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब केवल शुद्धि के ही विरुद्ध लगाया जाता है और वह भी विशेष रूप से मुसलमानों को हिन्दू बनाने के सम्बन्ध में तीव्रता से लगाया जाता है तब तो वह सरासर भ्रामक होता है, इतना ही नहीं तो पूर्णतः धूर्त होता है, क्योंकि इस वर्ग के लोग अस्पृश्यतानिवारण के लिए तो अकांड तांडव करते हैं, इतना ही नहीं तो उनमें से कुछ लोग अछूतों के साथ प्रकट रूप से खानपान आदि व्यवहार भी रखते हैं, उन्हें सुधार का भय नहीं होना, वे प्रचलित राजनीति में मंजे हुए होते हैं। मुसलमान, ईसाई इतना ही नहीं तो संसार की सभी जातियाँ एवं संस्कृतियाँ अपनी-अपनी संख्या बढ़ाने में प्रयत्नशील हैं, इससे वे भली-भांति परिचित भी होते हैं, परन्तु इसके उपरान्त भी जब वे केवल शुद्धि के विरुद्ध ही 'संख्या में क्या हैं' का रोना रोते हैं; उसमें भी मुसलमान चिढ़ते हैं इसलिये 'शुद्धि छोड़ो' की टेक की ताल पर जब वे रोना रोते हैं, तब तो उनका वह आक्षेप लगभग अप्रामाणिक ही होता है। यह तो मुसलमानों को अपने पक्ष की ओर आकृष्ट करने की, खींचने की एक युक्ति भर होती है। परन्तु वह इतनी आत्मघाती होती है कि उसके भयंकर परिणामों को गत छः वर्षों से हिन्दू समाज जो भोग रहा है उससे उसे अपरिमित हानि हुई है। ऐसी अवस्था में भी जब ये लोग 'केवल संख्या में क्या है' इस प्रकार का भोला-भाला उपदेश कर शुद्धि के विरुद्ध लोगों का बुद्धिभेद करने का अशुभ कार्य करने में नहीं हिचकिचाते, तब तो यह आवश्यक ही हो जाता है कि एक बार उनके इस तर्क की अच्छी सी खबर ली जाये।

संख्या में क्या धरा है। छोड़ दो वह शुद्धि। इस प्रकार के आक्षेपकों के उपरिनिर्दिष्ट जो दो उपवर्ग हमने बताये हैं उन्हीं के अनुसार हसननिज़ामी आदि मुसलमान भी उपदेश देते रहते हैं, यह भी एक स्मरणीय बात है। हसननिज़ामी आदि चालाक प्रचारक स्वयं तो मुसलमानों की संख्या बढ़ाने का काम अविरत रूप से एवं अच्छे-बुरे सभी मार्गों से चलाते रहते हैं पर जब श्रेष्ठता का स्वांग रचकर हिन्दुओं को ऐसा उपदेश देते हैं कि, "हिन्दुओ, मुसलमानों को शुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने की झंझट में पड़कर आप लोग हम मुसलमानों से शत्रुता क्यों मोल लेते हो ? आप अभी भी बाईस करोड़ की संख्या में हो। जो आज भी आपमें ही हैं, बचे हैं, उनकी ही उन्नति करो। अधिक शुद्धि करने की झंझट अपने पीछे क्यों लगा लेते हो ? संख्या में क्या धरा है ?" तब उनके इस आँख मींचकर दूध पीने के—मार्जारसाधुत्व का रहस्य यह होता है कि उसे इसापनीति को वह मुर्गी जैसा भोला जीव भी समझ सके। परन्तु, मुसलमानों के रोष से भय खानेवाले पर स्वकीयों के विरुद्ध मनचाहे बकना ही मानो साधुता है ऐसी घातक धारणा वाले कुछ हिन्दू लोग ऐसा आभास निर्माण कर, कि मानो उनके समझ में ही कुछ नहीं आया है, विपक्ष के पाखण्डी तर्क की लकीर पर ही चलने के लिये हिन्दुओं से ऐसा कहते हैं कि, "अजी, यह तो सच है संख्या में क्या धरा है ? अपने गुणों की शक्ति बढ़ाओ।"

परन्तु केवल संख्या में यदि वास्तव में कुछ भी नहीं है तो फिर ये महापुरुष उनका यह नवीन आविष्कृत महान सिद्धान्त सबसे पहले उनके ही उन प्रिय मुसलमानों एवं ईसाइयों को, उनके बन्धुओं को क्यों नहीं सिखाते ? किसी वैद्य महाशय के पास यदि किसी घातक रोग की रामबाण औषधि हो तो उन्हें वह औषधि, जो उस रोग से ग्रस्त नहीं हैं, या वह ग्रसित हो रहा है या नहीं, इसका निदान भी निश्चित हुआ नहीं है, ऐसे व्यक्ति के मुँह में बलपूर्वक डालते रहने की अपेक्षा सर्वप्रथम उन व्यक्तियों के घर जाकर उन्हें देना अधिक भूत-दया का एवं समयोचित कार्य नहीं होगा क्या, जो त्वरित उपाय न होने पर निश्चित रूप से उस रोग पर बलि चढ़ जाने के संकट से ग्रस्त होने वाले हैं ? बेचारी हिन्दुओं की शुद्धि ! उसकी क्या बात ? सारे सप्ताह भर में समूचे हिन्दुस्थान में संख्याबल हेतु दस-बारह लोग भी शुद्ध नहीं किये जाते। हिन्दुओं की आँखों का टेंटर आपकी सूक्ष्म दृष्टि को दिखाई देता है और उसे निकालने हेतु आँख का विच्छेदन (operation) करने के उद्देश्य से आप यह सैद्धान्तिक शल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुओं की आँख में घोंप रहे हैं यह आपके उपकार ही हैं। पर हम आपसे यह कहना चाहते हैं कि हमारे उन मुसलमान बन्धुओं की एवं मिशनरियों की आँखों में संख्याबल बढ़ाने की लालसा की बड़ी मोटी पुतली जो है, उसे देखो। वे देखो कैसे तड़प रहे हैं, सर्वप्रथम उन्हें ही उन यातनाओं से मुक्त करने का प्रयास आप जैसे भूतदया के भोक्ताओं को करना चाहिये। हमारी आँखों में घुसे हुए शुद्धि के इस टेंटर की पीड़ा हम थोड़े समय तक सह लेंगे। पर हमारे मुसलमानादि बन्धुओं के आँखों की उन तफ्रीम एवं तब्लीघ तथा मिशनों की बहाल जैसी पुतलियों की पीड़ा से वे देखो कितने कराह रहे हैं। यदि त्वरित ही उनका उपाय न किया जाये तो उनकी बुद्धि की आँखें धर्मांध हो जाएँगी—हो ही गई हैं। अतएव, अजी, उपकारी महाशय-जी, आप अपनी रामबाण औषधि लेकर पहले उधर दौड़ पड़ो और उनसे कहो कि, 'अरे पगलो, वास्तव शक्ति संख्याबल में नहीं है, वास्तव शक्ति तो गुणों की शक्ति है। छोड़ दो उन तंफ्रीमों को और बन्द कर दो उन मिशनों को ?' वह देखो, गुजरात में आगाखानपन्थी मुसलमान हिन्दुओं को भ्रष्ट कर उनका संख्याबल बढ़ाने के रोग से इतने पीड़ित हैं कि, हज़ारों-लाखों रुपये की धनराशि का व्यय कर हिन्दू धर्म पर असत्य एवं दुष्ट आरोप लगानेवाली पुस्तिकाएँ हज़ारों की संख्या में 'वितरित' कर भोले-भाले हिन्दुओं के सैकड़ों बच्चों को मुसलमान बनाते हुए घूम रहे हैं। वह हसननिज़ामी का जाल देखो—नीच वासनाओं के साधनों का उपयोग कर वेश्याओं की सहायता से भी हिन्दुओं को मुसलमान बनाने में वे नहीं हिचकिचाते। सिन्ध, बंगाल के मुसलमानों की उन टोलियों को देखो : तलवार के बल पर, छुरों के बल पर, बलात्कार से कुंआरी हिन्दू कन्याओं को भ्रष्ट कर, हिन्दू बालकों को अपहृत कर हर सप्ताह कितना उत्पात मचा रहे हैं। न्यायालय भी उन्हें दण्ड देते हुए थक चुके हैं। दिल्ली की मुसलमानी परिषद के भाषणों और प्रस्तावों को देखो : मुहम्मदअली से लेकर छोटे-मोटे गुण्डे तक प्रत्येक मुसलमान को कम-से-कम दस-बारह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुओं को तो भ्रष्ट करना ही चाहिये, इस प्रकार दहाड़ें मार रहे हैं—क्योंकि, हिन्दुस्थान में मुसलमानों की संख्या को हिन्दुओं से अधिक बनाना है। दो वर्षों में सात करोड़ मुसलमानों से पन्द्रह करोड़ बनाएंगे, पन्द्रह से सत्रह करोड़ बनाएँगे, सत्रह से बीस करोड़ बनाएँगे, जिससे अधिक अधिकार, हिन्दुस्थान का स्वामित्व-राज्य ही अपने मुसलमानी हाथों में आएगा। इस प्रकार की स्पष्ट भाषा, स्पष्ट प्रतिज्ञाएँ ली जा रहीं हैं। ये मिशन देखो—बम्बई, कलकत्ता जैसे विशाल नगरों से लेकर असम, छोटा नागपुर के जंगलों तक, हिन्दुओं को ईसाई बनाने की ओर। इस वर्ष ईसाइयों की संख्या इतनी बढ़ी इस प्रसन्नता में बरतानिया, अमरीका में समारोह करने की धूम मची हुई है। "यह ईसाई जाति प्रतिवर्ष कम-से कम दस लाख लोगों को निगलकर, पचाकर वृद्धिगत होती जा रही है।" तो क्या, केवल सद्‌गुणों की साक्षात् मूर्ति ही मानी हो, इस प्रकार के दस लाख लोगों का चयन कर वे उन्हें अपनी जाति में अन्तर्भूत कर लेते हैं? हट! अकाल में मृत्यु के द्वार पर बैठी हुई असहाय अबलाओं से लेकर दस-दस बार सश्रम कारावास का दण्ड भोगने के कारण जिनके पैरों में बेड़ियों से घट्टे पड़े हों—ऐसे सज्जन तक जो भी हाथ लगे उस हिन्दू को पकड़ा, और बनाया ईसाई। ऐसा उनका सपाटा लगा हुआ है।

यह सब क्या आपको दिखाई नहीं देता? सप्ताह में वही दस-पाँच विधर्मियों को शुद्ध करने का हिन्दुओं की आँखों में होने वाला यह शुद्धि का टेंटर आपके जिस दृष्टि प्रदेश में धूमकेतू के समान विस्तृत हो, दिखाई दे सकता है, आपकी उसी दृष्टि को मुसलमानों की एक मिशनरियों की संख्या बढ़ाने वाली हठधर्मी के पहाड़ के समान पुतली दिखाई न देती हो, यह तो सम्भव ही महीं। तो फिर आप उनके तबलीघ परिषदों में और मिशन हालों में जाकर भाषण क्यों नहीं देते हो कि, 'अरे पगलो, संख्याबल तुच्छ है। तुम केवल संख्या को क्यों बढ़ाते हो? यदि, हिन्दू तुम्हारे लोगों को शुद्ध कर लेते हों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो, करने दो, यदि उससे तुम्हारी संख्या घट जाये तो जो शेष होंगे उनकी गुणरूपी शक्ति को बढ़ाने का कार्य तुम्हारे लिये अधिक सरल एवं सुखावह होगा।

ये देखो जीना महोदय, वे अब्दुल रहीम देखो, वे गज़नवी देखो, चोरी के बदले में दस बार कारावास का दण्ड भोगकर अकरावी बार चोरी करने का अवसर मिलने तक खिलाफ़त आन्दोलन का स्वयंसेवक बनकर घूमने वाला यह गुण्डा देखो—प्रत्येक मुसलमान, 'संख्या ? संख्या ?' कहकर दहाड़ रहा है। हमारी संख्या अधिक होने से हमें पंजाब एवं बंगाल में अधिकार के स्थान अधिक संख्या में दो! हमारी संख्या कम होने से हमारे विशिष्ट हितों की रक्षा हेतु हमें बम्बई तथा मद्रास में अधिक संख्या में स्थान दो! ग्रामों में हमारी संख्या इतनी होने से लोकल बोर्ड में स्थान दो, नगरों में इतनी संख्या होने से नगर-संस्था में, प्रदेश में इतनी संख्या होने से विधानसभा में अधिक स्थान दो। गवर्नर के पद से चपरासी तक, हमारी संख्या इतनी होने से हमारे लिये इतने स्थान सुरक्षित रखो! इस प्रकार इधर-उधर सब दूर मुसलमानी मुखों से, मस्तिष्कों से, मनों से 'संख्या! बढ़ाओ! संख्या!' ऐसी अविरत चलने वाली दहाड़ें, शुद्धि की पतली तूती भी जिन्हें सुनाई देती हो ऐसे सूक्ष्म तन्तुओं से बने कानों को सुनाई नहीं देती क्या? तो फिर आप अपने इस मूल्यवान सिद्धान्त का उपदेश उन्हें क्यों नहीं देते? मुसलमान मेरे बन्धु हैं, ईसाई मेरे मित्र हैं, ऐसा कहने वाली ऐ भूतदया! संख्याबल के उन्माद से बौराए हुए इन भूतों की ओर तेरी अल्प-सी कृपादृष्टि भी क्यों नहीं होती? संख्याबल के नाम पर हिन्दुओं के बच्चे और कुंवारियाँ उन विधर्मी गुण्डों द्वारा अपहृत कर ले जाने के समाचार जब सदा ही समाचार-पत्रों में और अभियोग विभिन्न न्यायालयों में आते हैं तब तुम्हारे पत्रों से या मुखों से उसका उल्लेख भी नहीं होता यह बात भर समझ में नहीं आती। हिन्दुओं पर ही तेरी इतनी कृपा कैसी? थोड़ी दया करो और आते-जाते हिन्दुओं के सिर पर सवार न होकर, संख्याबल के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्माद से जर्जर बने उन तंभीम-तबलीघ की ओर ज़रा-सी अपनी दृष्टि तो डालो। हे वैद्यराज कृपया हमारा थोड़ा-सा तो विस्मरण आपको होने दो।

निरे संख्याबल में क्या है, ऐसा कहनेवाले धूर्तों को एक बार यह खरी-खरी सुनाना आवश्यक है कि आपके कथनानुसार शुद्धि केवल संख्याबल के वर्धन हेतु ही आवश्यक है ऐसा भी यदि मान लें तो भी वह आवश्यक ही है, क्योंकि संख्याबल भी एक बल ही है, शक्ति ही है। सर्वप्रथम यह ध्यान में रखना चाहिये कि यदि समाज-जाति अस्तित्व में होगी तब ही तो उसमें गुणरूपी शक्ति बढ़ाने का प्रश्न उत्पन्न होता है। विधर्मियों की हज़ारों वर्षों से चली आ रही धींगा-मस्ती से एक-एककर सभी हिन्दुओं को विधर्म में लूट ले जाने के पश्चात् यदि गुणरूपी शक्ति बढ़ाये तो किनमें बढ़ाये? गुण का अधिष्ठान ही यदि नष्ट हो जाय, हिन्दू जाति ही यदि शेष न रही, तो फिर उन्नति करें तो किसकी करें? यदि आप यह कहना चाहते हो कि जो शेष हैं उनकी उन्नति करो, तो फिर यदि प्रतिकार ही न किया जाये तो जो गये हैं उनके ही अनुसार जो शेष हैं वे भी नष्ट या भ्रष्ट हो ही जाएँगे। दूसरी बात यह है कि किसी भी व्यक्ति के या समाज के गुणरूपी शक्ति के बढ़ने की भी कोई सीमा होती है, चींटी की शारीरिक या मानसिक खुराक चाहे जितनी बढ़ाओ, वह हाथी तो हो नहीं सकती। घास का तिनका कितनी भी खाद क्यों न डालो घास का तिनका ही रहेगा। यदि उस घास के तिनके से हाथी को बाँधना हो तो गुणवर्धन की पूर्णता प्राप्त करने के पश्चात् भी जिस शक्ति को सम्पादित करना गुणवर्धन की प्राकृतिक कक्षा के बाह्य होने के कारण उसके लिए असम्भव होता है, उसकी पूर्ति संख्याबल से ही करनी पड़ती है। घास का तिनका रहता तो तिनका ही है पर उसके जैसे अनेक तिनके, नारियल के अनेक रेशे और रस्सियों के अनेक गुच्छे इकट्ठे करके अर्थात् उनका संख्याबल बढ़ाकर ही, उनको बल देकर ही, उससे एक संघटित नाड़ा या रस्सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया जा सकता है जो हाथी को बाँध सकता है। धान का एक ही पौधा लगाकर उसका गुणवर्धन करने के लिये चाहे जितने प्रयास किये जायें तो भी उससे एक परिवार का तो छोड़ो पर एक व्यक्ति का पेट भर सके इतने दाने भी उत्पन्न होना कठिन है। पर वैसे अनेक पौधे लगाकर यदि कृषि की जाये तो तत्काल मानीयों से धान उत्पन्न किया जा सकता है और इस प्रकार उनके संख्याबल के वर्धन से ही पेट भरने का कार्य उनसे करवाया जा सकता है। यदि कोई सज्जन यह कहें कि, अजी बोरे भर-भरके चावल इकट्ठा करने की झंझट में क्यों पड़ते हो, पागल कहीं के...संख्याबल तो तुच्छ है, यह देखो, मैं चावल का एक दाना लेता हूँ, उसके गुणवर्धन की ओर विशेष ध्यान देता हूँ और उसका एक डेकची भर के चावल पकाकर आपको देता हूँ, ले जाने दो उन चोट्टों को वे बाकी के चावल से भरे वोरे ? नहीं तो वे रुष्ट हो जाएँगे ? तो उनके गुणवर्धन के प्रयोग सफल होकर चावल के एक दाने का एक डेकची चावल पकना जितना दुर्घट है उतना ही दुर्बल एवं मूर्खतापूर्ण है उनका यह तत्त्व-ज्ञान कि जितने वे भ्रष्ट कर सकते हैं उतने को उन्हें भ्रष्ट करने दो, फिर जो बचे रहेंगे, उनके गुणवर्धन की ओर हम विशेष ध्यान देंगे।

इसीलिये तो दस शस्त्रधारी महान अवतार भी संख्याबल की सहायता के बिना अपने विपक्षी समाज से टकरा नहीं सके। भगवान राम तो एकवचनी, अवतारी पुरुष थे, तथापि लंका पर वे तब ही आक्रमण कर सके जब वानरों का संख्याबल उन्होंने प्राप्त किया। वे स्वयं अवतारी पुरुष होने पर भी वानरों के समान असंस्कृत योनि के प्राणियों की सहायता उन्हें लेनी पड़ी ? संख्याबल के बिना केवल गुणबल इतना पंगु है। रावण तो शरीर-गुणवर्धन की मानो परा-काष्ठा ही था, उसे बीस भुजाएँ थीं और दस सिर ? पर हजारों राक्षसों के संख्याबल के बिना उतने दिन भी वह लंका को लड़ा नहीं सकता था जितने दिन उसने लंका को लड़ाया। भगवान् कृष्ण, सुदर्शनधारी ! पर अकेले महाभारत नहीं लड़ सके, सव्यसाची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन से लेकर घटोत्कच राक्षस तक के सैंकड़ों वीरों का एवं लाखों सैनिकों का संख्याबल उन्हें एकत्रित करना पड़ा। गुणोत्कर्ष प्राप्त भगवान् श्रीकृष्ण जैसी विभूतियाँ भी संख्याबल की पूर्ण उपेक्षा न कर सकीं। वह मुहम्मद पैगम्बर देखो, मक्का में अकेला था, फिर भी पैगम्बर तो था ही, पर संख्याबल के सम्मुख इतना दीन था कि चोरी-छुपे नमाज़ पढ़ता था। और दास, दरिद्री, गुणी, अवगुणी जो भी मिल जाये, ऐसे अनुयायी संग्रहीत कर जब वह मदीने का संख्या-बल अपने साथ बनाने लगा तब कहीं प्रकट रूप से वह मक्का में नमाज़ पढ़ सका। उसे भी संख्याबल का उचित ज्ञान था इसीलिए कोई भी सम्भव प्रलोभन देकर मुसलमानों का संख्याबल बढ़ाने हेतु उसने उतने कठिन परिश्रम किये जितने गुणबल बढ़ाने हेतु किये थे। मुसलमानी इतिहास तो संख्याबल की लालसा के लाल स्याही में ही लिखा गया है। अफ्रीका में जब कोई प्रदेश जीता जाता, तो सम्बन्धित मुसलमान विजेता जो कर उगाता था उसमें से आधा द्रव्य के रूप में होता था और शेष आधा हिस्सा जीती हुई जाति की स्त्रियों के रूप में होता था, क्योंकि, स्त्रियों के रूप में प्राप्त वह कर मुसलमानी सेना के सिपाहियों में बाँटने से उससे मुसलमानी संतति बढ़ती थी—संख्याबल बढ़ता था। चोर-बदमाशों को, बच्चों-कच्चों को भी जो बल-पूर्वक या प्रलोभन देकर आज भी मुसलमान या ईसाई बनाया जाता है, वह कोई इसलिये नहीं होता कि उस व्यक्ति का तत्काल गुण-वर्धन करना होता है, या उस प्रकार के नीच लोगों को जाति में लेने से जाति का गुणवर्धन होता है। तो उन्हें इसीलिए लिया जाता है कि उससे संख्यावर्धन होता है। और कल जहाँ उनका एक भी अनुयायी दिखाई नहीं देता था, वहाँ उनके आज करोड़ों अनुयायी दिखाई दे रहे हैं, इतना ही नहीं तो भारी हुए हैं, इस बात से कौन भला नकारा कर सकता है? यदि मुहम्मद पैगम्बर संख्यावर्धन की आक्रामक नीति नहीं अपनाता, तो वह मरते दम तक अकेला महम्मद ही रहता। संसार में आज जो बीस करोड़ मुसलमान फैले हुए हैं वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदाचित् ही दिखाई देते। गत महायुद्ध काल में जर्मन लोग क्या सैनिक गुणबल में अन्य विपक्षी राष्ट्रों से कम थे? शास्त्र, शस्त्र, एवं शूरता में वे व्यक्तिशः या समाजशः बढ़कर ही थे। पर उनके विपक्षियों ने उन पर जो सीनाज़ोरी की वह मुख्यतः संख्याबल पर ही नहीं की थी क्या? अमरीका के युद्धप्रवेश से संयुक्तराष्ट्र का संख्याबल अकेले जर्मनी के संख्याबल से एकदम बहुत बढ़ गया, यही तो उक्त पराजय का एक प्रमुख कारण है। जब ऐसी स्पष्ट स्थिति दिखाई देती हो और साथ ही विपक्षियों द्वारा संख्याबल-वर्धन के यथासम्भव पूरे प्रयास होते हों तब हिन्दू को भर यह कहना कि, "संख्या में क्या है? लुटने दो? भ्रष्ट होने दो? जो बचेंगे उनकी ही गुणरूपी शक्ति आप बढ़ाते रहो क्योंकि, वही पर्याप्त है।" क्या यह आत्मवंचना की चरम सीमा नहीं है? पालने के निकट खड़ी होकर दादी माँ जो कहानी कहती हैं, उस कहानी का वह प्रचण्ड राक्षस एक-एक मुट्ठी में दस-दस लोगों को पकड़ने वाला!—उस राक्षस की बात पर विश्वास रखने वाला अल्हड़ बच्चा भी इतना तो समझता ही है कि उस राक्षस की मुट्ठी में सब कुछ तो नहीं समायेगा, और उसकी खबर लेने के लिये कुछ तो बचेगा ही?—पर संख्याबल के महत्त्व की इतनी साधारण सी बात भी इन प्रतिष्ठित तथा सुज्ञ अल्हड़ों की समझ में नहीं आती यह कितने आश्चर्य की बात है? या आश्चर्य की भी नहीं। तथापि, मुसलमानों को सन्तुष्ट रखना है, इसलिये शुद्धि के विरुद्ध कुछ तो बोलना ही चाहिये, पर न्यायपूर्ण अधिकार की दृष्टि से तो अब कुछ बोला ही नहीं जा सकता। इसलिए इस पुष्पित वाणी से उसका निषेध करने के प्रयास रूप ऐसे धूर्त विधान किये जाते हैं कि हिन्दुओ, जाने दो उस शुद्धि को! ज़रा समझो तो, संख्या में क्या धरा है? करोड़ों भ्रष्ट होते हैं तो होने दो, हम जो मुट्ठीभर शेष रहेंगे वे ही गुणरूपी शक्ति से बढ़कर, बढ़कर, बढ़कर—'जैसे मानो तब तक अन्य जातियाँ गुणरूपी शक्ति में कम ही होती जाएँगी?' वे भी तो गुण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपी शक्ति को बढ़ाती जाएँगी और फिर समान गुणों का जोड़ लगने पर अन्ततोगत्वा संख्याबल के प्रश्न पर ही प्रमुख रूप से राष्ट्र के एवं 'समाज के जीवन-मरण का प्रश्न अवलम्बित होगा।'

परन्तु, यदि कोई ऐसा कहें कि, हमें तो केवल संख्याबल ही बढ़ाना है तो उनके लिये एक बार यह उत्तर उचित होता कि, केवल संख्याबल से सर्वत्र हमारा काम हो नहीं सकता, गुणरूपी शक्ति की ओर भी ध्यान देना ही होगा। पर, इन आक्षेपकों से यह किसने कहा कि, शुद्धि आन्दोलन या अस्पृश्यतानिवारण के तीव्र प्रयास केवल संख्याबल के ही वर्धन हेतु चल रहे हैं ?

आपसे यह किसने कहा कि हम केवल संख्याबल ही चाहते हैं और गुणरूपी बल हमें आवश्यक नहीं है ?

गुणरूपी बल बहुत श्रेष्ठ इस प्रकार के एक सौ लोगों की एक टोली हो, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति श्रीकृष्ण के समान चतुर एवं भीम के समान बलवान् है। ऐसा भी यदि मान लें, तो भी उन पर उक्त गुणबल में व्यक्तिश: बहुत ही कम होनेवाले एक हजार लोगों की टोली यदि टूट पड़े तो वह उनका सफाया किये बिना नहीं रह सकती। ज़रा-सी टिड्डी, मनुष्य की तुलना में गुणरूपी शक्ति में कितनी कनिष्ठ— यःकश्चित् कीड़ा, परन्तु जब वैसी, असाराणाम् हि वस्तूनां संहति:— उन टिड्डियों की अगणित संख्या का संहत धावा जब मानव पर होता है तब गाँव-के-गाँव और प्रदेश-के-प्रदेश वीरान बना के वह आगे बढ़ता है। छत्रपति शिवाजी, समर्थ गुरु रामदास गुणरूपी शक्ति के—दैवी गुणबल के मूर्तिमन्त अवतार थे—पर अफ़ज़लखान से लेकर औरंगजेब की सेना तक से वे अकेले मानना नहीं कर सके। उपद्रवी विद्रोही सरदारों से लेकर साधारण मनुष्य तक के हजारों लोगों का संख्याबल एकत्रित करके ही उन्हें यह कार्य सम्पादित करना पड़ा। यह स्पष्टरूप से दिखाई देने वाली बात अपनी दृष्टि से ओझल करने की यह एक ही चालाकी, शुद्धिसंगठन के सम्बन्ध में बकवास करने वाले ये आक्षेपक करते हैं ऐसी बात नहीं, तो उनके "संख्याबल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में क्या धरा है, गुणरूपी बल को—शक्ति को बढ़ाओ," इस चालबाज या भोले-भाले उपदेश में और एक हेत्वाभास निहित होता है और वह यह कि, संगठन के पुष्टिकर्ता गुणरूपी बल मानो चाहते ही नहीं, उनके सारे तीव्र प्रयास केवल संख्याबल बढ़ाने हेतु ही चल रहे हैं। परन्तु आक्षेपकों में जो लोग इतने भोले हैं कि, संगठन आन्दोलन के उद्देश्यों में सर्वप्रमुख उद्देश्य है व्यक्तिगत, एवं राष्ट्रीय गुणबल को वढ़ाना ? हमें हमारे हिन्दूराष्ट्र का संख्याबल तो बढ़ाना ही है, पर साथ ही हमें उसका राष्ट्रीय गुणबल भी बढ़ाना है।

'संगठन' यह शब्द गुणवाचक नहीं है क्या ? राष्ट्रीय गुणों की श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ प्रवृत्ति में संगठन की गणना करनी ही होगी। जिन हिन्दुओं में हिन्दुत्व भावना से, स्वराष्ट्र भावना से प्रेरित हो इस प्रकार का संगठन हो रहा है, उनका राष्ट्रीय गुणबल बढ़ रहा है। अछूतोद्धार की दूसरी बात को देखो, केवल संख्याबल भर बढ़ाने के लिए अस्पृश्यतानिवारण नहीं हो रहा है, उसका कार्य तो प्रत्यक्ष आपके सम्मुख है। राष्ट्रीय सभा—कांग्रेस—के बेलगाम अधिवेशन में अस्पृश्यतानिवारण का प्रस्ताव पारित हुआ, परन्तु उक्त अधिवेशन में उपस्थित हजारों लोगों में से कितने लोगों ने उस प्रस्ताव के अनुसार असपृश्यता का त्याग किया ? अस्पृश्यतानिवारक प्रत्येक कार्यकर्ता तो प्रत्यक्ष रूप से इस बात को जानते ही हैं कि, जब प्रत्यक्ष अछूतों में मिलने का समय आता था तब खादी वस्त्रों से सजे हुए लोगों द्वारा होने वाला उसका विरोध मुकटा परिधान किये हुए किसी कर्मठ पण्डित के विरोध से कम तीव्र नहीं था। पर उसी आन्दोलन को जब हिन्दू संगठन के प्रतिपादकों ने अपने हाथ में लिया तो देखो तत्काल ही उसमें कितना परिवर्तन हुआ, कई स्थानों पर संगठन की ओर से अछूतों के विद्यालय चल रहे हैं, बसोड़ों की बस्ती में जाकर वे भजनों के कार्यक्रम करते हैं, जमींदार आदि लोगों द्वारा दिये जाने वाले कष्टों से उनकी मुक्ति करने हेतु उनकी ओर से न्यायालय में बिना किसी प्रतिफल के अभियोग चलाये जा रहे हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके लिये विस्तीर्ण भूमि क्रयित कर उस पर सुन्दर झोंपड़ियों का निर्माण कर प्रत्येक में स्वास्थ्य एवं स्वच्छतावर्धक साधनों की व्यवस्था कर उनकी स्वतन्त्र बस्तियाँ बसाई जा रही हैं। दुष्ट आहार से उन्हें निवृत्त किया जा रहा है। सामाजिक संस्थाओं तथा नगर संस्थाओं में उनके लिये प्रवेश-द्वार मुक्त किये जाने के कारण उनकी राष्ट्रीय भावनाओं का एव अनुभवों का विकास हो रहा है। उनके अधिकारों की प्राप्ति हेतु संगठित सत्याग्रह हो रहे हैं। क्या वे अछूतों में गुणरूपी बल को नहीं बढ़ाते हैं? उक्त आन्दोलनों को प्रत्यक्ष आचरणों में लाकर नगर पर नगर और ग्राम पर ग्राम अस्पृश्यतारहित बनाकर पूर्ण-स्पृश्य किये जा रहे हैं। और फिर उसी के साथ ही उन पूर्वास्पृश्यों में शिक्षा, स्वाभिमान, राष्ट्रीय भावना, स्वच्छता, स्वास्थ्य, संगठन आदि गुणों का विकास यथाप्रमाण हो रहा है। हिन्दू-संगठन के अप-नाये हुए शरीर बलवर्धन के प्रयासों की स्थिति भी उसी प्रकार है। जब से यह हिन्दू-जागृति हो रही है तब से स्थान-स्थान पर नई-नई व्यायामशालाएं—अखाड़े प्रारम्भ किये जा रहे हैं और हजारों की संख्या में छात्रवर्ग उसमें सांघिक एवं सैनिक शिक्षा प्राप्त कर रहा हैं। क्या यह शारीरिक गुणबल की वृद्धि नहीं? स्पृश्यवर्ग के अन्तः-सुधार की भी वही स्थिति है। बाल-विवाह बन्द करने के लिये हिन्दू संगठन तीव्र प्रयास करता है, परस्पर जातियों में होने वाला मूर्ख द्वेष एव भेदभाव दूर कर हिन्दू मात्र को एकता की राष्ट्रीय भावना से उत्स्फूर्त करने का यथेष्ट प्रयास करता है, गीताजयंती, शिवजयंती आदि समारोह मनाकर हिन्दू जनता में राष्ट्रीय प्रवृत्ति एवं श्रेष्ठत्व का सृजन किया जाता है, मन्दिर-सुधार का आन्दोलन चलाया जाता है, कुम्भ-मेलों में एवं अन्य यात्रा उत्सवों में सुव्यवस्था बनाये रखकर बड़े-बड़े विद्वानों के प्रवचनों के माध्यम से धर्म-तेज तथा इतिहास की शिक्षा को लाखों लोगों में प्रसृत किया जाता है—क्या ये सारे कार्य हिन्दू राष्ट्र में गुणरूपी बल का वर्धन करने के लिये नहीं किये जाते? शुद्धि आन्दोलन तो हिन्दू समाज में एक ही समय

हि०—५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में संख्याबल एवं गुणबल को साथ-साथ बढ़ाने वाली परमौषधि है। हिन्दू समाज की कूपमण्डूक वृत्ति से, अहिन्दुओं के बलात्कार से, विधर्मी रहने वाला एक मनुष्य जिस क्षण हिन्दू समाज में पुनः लाया जाता है, उस क्षण ही, उस एक ही झटके से हिन्दू समाज के अनेक दुर्गुणों पर एक साथ ही आघात किया जाता है, जिसके परिणाम-स्वरूप हिन्दू समाज का गुणाबल बढ़ता है। उन शुद्धिकृत मनुष्यों में उस संस्कार के कारण ही हिन्दू, पूर्वजों के लिये, हिन्दुस्थान देश के लिये, हिन्दू संस्कृति के लिये जो ममताबुद्धि एवं पूज्यबुद्धि उत्पन्न होती है, वह उसका राष्ट्रीय गुण विकास ही होता है। हिन्दू समाज की पूर्वस्थित कूपमण्डूक वृत्ति उस प्रमाण में नष्ट होती है, अतिरेकी जातिभेद के बन्धन उस प्रमाण में शिथिल हो जाते हैं, जो-जो भी हिन्दू हैं वह प्रत्येक अपना बन्धु है यह भावना उदित होती है, पुरातन रूढ़ियों के बन्धन राष्ट्र के लिये घातक सिद्ध होते ही उन्हें तोड़ डालने का साहस उत्पन्न होता है, समूची जाति में खलबली प्रारम्भ होकर प्रस्तुत के जातीय संकट का ज्ञान एवं उसकी कल्पना उत्पन्न होती है—विगत तथा प्रस्तुत की तुलना करने की विलक्षण बुद्धि जागृत होती है, हिन्दुत्व, रक्षण के हेतु लड़ने की वीरवृत्ति वृद्धिगत होती है। हिन्दू समाज के अनेक दुर्गुणों का अस्त होने के लिये एवं राष्ट्रीय गुणों का विकास होने के लिये उस प्रत्येक परिणाम से अमूल्य सहायता प्राप्त होती है। किसी ग्राम में शुद्धि समारोह होते ही जो सनसनी मचती है, उसे जिन्होंने देखा है वे इस बात से तत्काल सहमत हो जाएँगे कि दस राजनैतिक सभाओं से समाज के उच्च स्तर में भी जो आन्दोलन एवं राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न नहीं होती, वह एक शुद्धि समारोह से उत्पन्न होकर समाज के अन्तिम स्तर तक भोई, कुम्हार, बसोड़, चमार आदि तक सामाजिक भावना का वह धक्का पहुँच जाता है। क्या यह सारा कार्य राष्ट्रीय गुणवर्धनकारक नहीं है? हिन्दू संगठन अनाथालय प्रारम्भ करता है, उनमें उन दुर्दैवी बालकों का शारीरिक, सैनिक, मानसिक एवं आत्मिक पालन, परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्धन किया जाता है, जो जन्म लेते ही मृत्युमुख में धकेल दिये जाते हैं या भूख-भूख की चीख लगाते हुए भटकते फिरते हैं। उन बालकों को वहाँ पर शिक्षा दी जाती है, हिन्दुत्व के हमारे अभिमान की भावना उनमें उत्पन्न की जाती है, यह सब हिन्दू जाति की गुणरूपी शक्ति को बढ़ाने में कारणभूत होता है या उसे गँवाने में ? राष्ट्रीय गुणवर्धक ऐसे अनेक आन्दोलन जिन हिन्दू संगठन के प्रतिपादकों ने चलाये रखे हैं और विदेशागमन से लेकर शुद्धि तक के जो सैकड़ों सुधार, जिन्होंने हिन्दू समाज में, केवल प्रस्ताव पारित करके ही नहीं, तो प्रत्यक्ष आचरण में लाकर प्रसृत किये हैं, उन्होंने ये कार्य इसीलिये किये हैं कि वे जानते थे कि हिन्दू राष्ट्र का गुणबल बढ़ाना भी आवश्यक है, उन्हें ये बातें सिखाने के लिये किसी पौंगे पण्डित की आवश्यकता नहीं है।

हमें गुणबल तो आवश्यक ही है, पर संख्याबल भी हमें आवश्यक है। हमारा हिन्दूराष्ट्र हम संख्या के रूप में भी घटने नहीं देंगे, गुणों में भी घटने नहीं देंगे। अस्पृश्यतानिवारण एवं शुद्धि इन दोहरे साधनों से हम हमारा संख्याबल बढ़ायेंगे और गुणबल भी बढ़ायेंगे। गुणबल पंगु है तो अकेला संख्याबल अंध है, इस सामाजिक सत्य को हम आप की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानते हैं, अतएव "केवल संख्याबल में क्या है" यह अक्ल सिखाने का कष्ट आप न कीजिये। यदि आपको चैन ही न पड़ती हो तो वह अक्ल आप आपके मुसलमानादि भाई-बन्दों को जुम्मा-मस्जिद में जाकर सिखाइये। उन्हें वास्तव में उसकी बहुत आवश्यकता है, अर्थात् यह अक्ल सिखाने के लिए जुम्मा-मस्जिद की सीढ़ी चढ़ने का साहस आप कर सकते हो तब ही !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा न समझो कि प्रतिघात का साहस हिन्दुओं में नहीं है

नहीं ! हिन्दूधर्म क्लैव्य की गाथा नहीं है—हिन्दूधर्म निःसन्देह सात्विक क्षमाशील, हिन्दूधर्म निःसन्देह क्रोधशील है। 'क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ" यह हिन्दूधर्म की गर्जना है। 'अहिंसा परमो धर्मः' यह जिस हिन्दू धर्म की परिभाषा है उसी हिन्दूधर्म की आग्रहपूर्वक एवं तेजस्वी आज्ञा यह भी है कि, "आततायिनमायान्तं हन्यादेवविचारयन्" तथा इन दोनों आज्ञाओं का समन्वय हिन्दूधर्म ही उत्तम प्रकार से कर सकता है। हिंसा एवं अहिंसा के अर्थों की वर्तमान में गांधीजी जैसे पोंगापण्डितों ने जो उधेड़बुन मचा रखी है, उससे वे वचन भले ही परस्पर विरोधी दिखाई देते हों, परन्तु हिन्दूधर्म के मर्मज्ञ आचार्य, पूर्व से ही इस शब्द का जो अर्थ बताते आये हैं, उसको ध्यान में लेने पर, 'तस्मादुतिष्ठ कौंतेय, युद्धाय कृतनिश्चयः' का गर्जन करते हुए अपना सुदर्शन-चक्र ऊँचा उठाने वाले कंसकन्दन कृष्ण एवं उनकी वह गीता ये दोनों ही हिन्दूधर्म एवं हिन्दूराष्ट्र के प्रमुखतम आराध्य देवता क्यों बने यह सबके समझ में आने जैसी बात है।

यहाँ तो इतना ही बताना पर्याप्त है कि, रावण का वध कर श्रीरामजी के विजयी होने पर सीतादेवी जब उन्हें पुनः प्राप्त हुईं तब जनरीति के अनुसार उसको स्वीकार करें या न करें ऐसी विपण्ण शंका से ग्रस्त होकर रामचन्द्रजी बोले थे, "हे सीते, तुम वापस जाओ, तुम्हें प्राप्त करने के लिए मैंने रावण का वध नहीं किया; तो, रावण का वध उसने रघुकुल का जो घोर अपमान किया था उसके प्रतिशोध में मेरे द्वारा किया गया था ! हे सीते, साँप जो दंश करता है, वह रक्त प्राशन हेतु नहीं करता है, वह तो पुच्छाघात का बैर निकालने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए करता है।" ऐसा कहने वाले श्रीरामजी को हिन्दूधर्म आदर्श मानकर पूजता है।

तथा जिस युधिष्ठिर का उदाहरण गांधीजी ने उनकी सदा की भ्रान्त प्रवृत्ति के अनुसार इस बार भी हिन्दू लोगों के लिए उदाहरणीय रूप से उपमान के रूप में रखा है, उस युधिष्ठिर ने ही तो अठारह दिन तक महाभारत का युद्ध लड़ा था। जब कर्ण को मारने में अर्जुन को विलम्ब हुआ, तब यही क्षमा की मूर्ति क्रोध से आगबबूली होकर उसके पौरुष को धिक्कार रही थी! उसका तो नाम ही 'क्षमास्थिर' न होकर 'युधिष्ठिर' है—अर्थात् क्षमा की भीरुतायी परिभाषा से विचलित न होते हुए युद्ध में स्थिर रहने वाला! उस युधिष्ठिर की उपमा गांधीजी के लेखों में दी है।—और वह यह सिद्ध करने के लिए कि 'आत्यन्तिक क्षमा' ही हिन्दुओं का धर्म है! इस प्रकार ऐसे अवसरों पर 'आत्यंतिक क्षमा' की मूर्ति के रूप में युधिष्ठिर का उपमान हिन्दू लोगों के सम्मुख रखने के माने हैं स्वतः के वचन के विरुद्ध स्वतः ही अर्थ व्यक्त करना। शंकरजी की उपमाएँ भी इतनी अनर्थक एवं हास्यास्पद नहीं होती हैं।

'हिन्दू मुसलमान की भाँति विक्षिप्त कट्टर नहीं, पर हिन्दू कट्टर अवश्य हैं। हिन्दू मुसलमान की भाँति धर्मोन्मत्त वीर नहीं, पर हिन्दू धर्मवीर अवश्य हैं। यदि वह ऐसा न होता तो इस जीवन-कलह में आज तक वह जीवित ही न रहता।' पुरातन इतिहास की कहानियों को यदि छोड़ भी दें तो भी प्रत्यक्ष गत दस-बीस वर्षों में ही एक नहीं, दो नहीं, सैंकड़ों ऐसे हिन्दू युवक नहीं निकले क्या कि जिन्होंने हिन्दुस्थान की स्वतन्त्रता हेतु हंसते-हंसते फाँसी के तख्ते पर आरोहण किया? हज़ारों गोरे सैनिकों की नंगी तलवारों के पहरे में हाथी की अम्बारी में बैठे हुए गवर्नर जनरल को आहत किया अठारह-अठारह वर्ष की आयु वाले लड़कों ने। जिस मदनलाल ढींगरा की देशभक्ति एवं अतुल साहस का स्तुतिगान चर्चिल एवं लाइड जार्ज आदि ने किया और उसकी तुलना रोम के अत्यन्त श्रेष्ठ हुतात्माओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से की वह मदनलाल ढींगरा हिन्दू ही था यह बात किसी को भूलनी नहीं चाहिये। स्वतन्त्रता के ध्येयप्राप्ति हेतु फांसी पर मरनेवाले या अण्डमान के मृत्युमुख में होते हुए भी क्रान्तिगीतों को एवं स्वतन्त्रता-स्तोत्रों को गानेवाले सैकड़ों युवक एवं वृद्ध लोग हिन्दुओं में निकले हैं, आज भी निकल रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Central Library
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
168026
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

धर्म का स्थान हृदय है, पेट नहीं !

यदि कोई हिन्दू, मुसलमान या ईसाई द्वारा स्पर्श किया हुग्रा ग्रन्न खा ले, या पानी पीले तो वह भ्रष्ट हो जाता है, यह कल्पना ही वास्तव में मूर्ख कल्पना है, क्योंकि धर्म का स्थान पेट न होकर हृदय होता है। जिस व्यक्ति के हृदय से हिन्दूधर्म की भक्ति ग्रस्तंगत न हुई हो वह यदि मुसलमान के घर एक बार ही क्या हज़ारों बार भी भोजन करे, तो भी वह भ्रष्ट नहीं हो सकता। मुसलमान लोग हिन्दुग्रों का भोजन भूल से ही नहीं तो छीनकर भी खाते हैं ग्रौर फिर भी पूर्ववत् मुसलमान के मुसलमान ही बने रहते हैं। इतना ही नहीं तो हिन्दुग्रों के ग्रन्न पर अपनी जीविका चलाकर ग्रवसर ग्राते ही उन्हीं हिन्दुग्रों को 'काफर' कहने का मानो उनमें कुलाचार ही बनता जा रहा है, तो फिर मुसलमानों का भोजन खाने से हिन्दुग्रों का धर्म ही नष्ट होने इतनी हिन्दूसमाज की पाचनशक्ति क्षीण भला क्यों रहे ? ग्रब हमें, उस पाचनशक्ति को ग्रगस्त्य ऋषि के समान समस्त जगत् पचाने में सक्षम, तेजस्वी एवं प्रदीप्त करना चाहिये। इस दृष्टि से विचार किया जाये तो केवलमात्र ग्रन्नोदक के लिए ही भ्रष्ट हुए मनुष्य को शुद्ध करने का भी कोई कारण नहीं है। पर जो भी ग्राज हमें यह बात ग्रत्यन्त क्षुद्र दिखाई देती है—ग्रौर उसका इस प्रकार क्षुद्र दिखाई देना ही हमारे बढ़ते हुए बल का निदर्शक है—तो भी जब तक समाज के हजारों लोगों के मन में से उस बावली कल्पना का निर्बीजन नहीं होता तब तक कुछ दिन तो इन शुद्धि-समारोहों को ग्रायोजित करना ही चाहिये। इस कारण की ग्रपेक्षा एक ग्रन्य महत्त्वपूर्ण कारण के लिए भी ये समारोह होने चाहिएँ। इतना ही नहीं तो उन समारोहों का विशेष प्रचार भी किया जाना चाहिये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि जिस प्रकार हिन्दुओं के मन में जो यह एक बावली धारणा दृढ़मूल हो चुकी है कि किसी के पानी का एक बूंद भी यदि उसके मुँह में पड़ जाये तो आजीवन वह मनुष्य ही नहीं तो उसकी पीढ़ियाँ भी भ्रष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार ही मुसलमान आदि अहिन्दू समाजों में भी विपरीत स्वरूप की एक घातक धारणा दृढ़तर हुई है और वह यह कि, किसी भी हिन्दू को उसकी विक्षिप्तावस्था में या भुखमरी की अवस्था में पकड़कर उसे दो कौर अन्न मुसलमानी हाथ से खिलाया जाये तो वह मनुष्य स्वेच्छा से मुसलमान हुआ है, ऐसा हिन्दू समझने लगते हैं और उसे मुसलमान या ईसाई समाज के हाथों सौंप देते हैं।

अब हमारे लिए खानपान के व्यवहार का महत्त्व जो नहीं रहा है, वह इस क्षेत्र में हमारे समाज में हुई समाजहितकारी विचारक्रान्ति का ही निदर्शक है। इसीलिए, अन्न-व्यवहार से धर्म भ्रष्ट होता है यह धारणा निरी मूर्ख धारणा है, ऐसा माननेवाली 'इस विचार-क्रान्ति को मुसलमानादि समस्त अहिन्दुओं में घोषित करने के लिए तो इस शुद्धिकरण संस्कार को कुछ दिन तक चालू रखना आवश्यक है।' इस शुद्धिकरण आन्दोलन से मुसलमानादि जातियों की समझ में यह बात शीघ्र ही आ जाएगी कि हिन्दुओं को भ्रष्ट करने के उद्देश्य से वे जो भोजन बाँटते हैं वह अब व्यर्थ जानेवाला है। हिन्दुओं की जठराग्नि उनका वह अन्न खाकर उसे पचाने में इतनी प्रदीप्त हो चुकी है। ऐसा अनुभव उस अहिन्दू समाज को यदि अविरत रूप से दो-तीन वर्ष तक आता रहे तो अकाल, भुखमरी, विक्षिप्तावस्था ऐसी विपत्तियों से घिरे हुए हिन्दुओं के भ्रष्टीकरण के उद्देश्य से उनका पोषण करने के विफल परिश्रम उठाना वे स्वयं ही छोड़ देंगे। अब वे दिन बीत चुके, जब केवल एक दिन किसी हिन्दू की ओर रोटी के दो टुकड़े फेंक देने पर वह तथा उसकी सन्तान मुसलमान हो जाती? हिन्दुओं को अब इतने सस्ते मूल्य में क्रय करना सम्भव नहीं है, यह एक बार मुसलमान आदि विधर्मियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पूर्णतः अनुभव में यदि आ जाये तो समझ लो कि मिशनरियों का दिवाला ही निकल गया ? अमरीकन आदि पाश्चात्य राष्ट्रों के ईसाई फिर ऐसे विफल साधन पर करोड़ों रुपये का व्यय नहीं करेंगे। 'यदि उन पादरियों एवं पीरों को यह ठीक से पता पड़ जाये कि, हिन्दू को एक दिन पाला-पोसा हो या-दस वर्ष तक पाला-पोसा हो, अवसर पाते ही वह एक तुलसीपत्र का भक्षण कर फिर हिन्दू बन जाता है, तो फिर वे अपनी भ्रष्टीकरण की दुकानें त्वरित ही उठा कर रास्ता नापने लगेंगे। हम तो प्रत्येक हिन्दू को यह प्रकट रूप से कहते हैं कि, यदि अन्य कोई उपाय शेष ही न हो तो मुसलमान के घर पर डटकर भोजन करो, जल पीओ, अंग्रेजों के घर पर भोजन करो, जल पीओ, सारे संसार में किसी भी व्यक्ति के यहाँ भोजन, करो, जल पीओ, और उसके त्वरित पश्चात् मुखशुद्धि हेतु एक तुलसीपत्र का भक्षण करो, जिससे तुम्हारी मुखशुद्धि ही नहीं तो आत्मशुद्धि भी होकर, साथ में अन्न का भी पूर्णतः पाचन होकर फिर तुम हिन्दू के हिन्दू ही रहोगे। आज तक सारे संसार ने हिन्दू का खाया, हिन्दू को लूटा, अब तुम उस संसार से उसका भुगतान करवा लो, सारे संसार का अन्न खाओ और फिर भी हिन्दू के हिन्दू ही बने रहो ? खान-पान से हिन्दूधर्मीय भ्रष्ट हो भी कैसे सकता है ? क्योंकि, हिन्दू धर्म का निवासस्थान आपके पेट में न होकर रक्त में है, बीज में है, हृदय में है, आत्मा में है, और उस हिन्दू रक्त-बीज, हृदय तथा आत्मा का मुसलमानादि विधर्मियों के एक प्याले में ही क्या पर समूचे सागर में भी डूब जाना असम्भव है। जिस रामनाम के आधार से भवसागर पर शिलाएँ तैरीं, उस रामनाम के उच्चारण के साथ ही, अर्थात् यदि वह उच्चार पश्चात्तप्त अन्तः-करण का हो तो—उसके महत्पाप भी जहाँ भस्मीभूत हो जाएँगे, वहाँ मुसलमानी चावल के एक कौर की क्या बात ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह ईश्वर ही कैसा जो केवल दर्शन मात्र से बिटल जाये

'बम्बई' की 'ब्राह्मण सभा' नामक एक संस्था ने दि० २८ अगस्त की गणेशोत्सव की सभा में श्रीगणेशजी के सम्मुख अछूत हिन्दू-बन्धुओं के कलापथक के कार्यक्रम करने की अनुमति देने का प्रस्ताव पारित किया, महाराष्ट्र के समस्त संगटनतत्त्व के प्रतिपादकों को इससे हार्दिक प्रसन्नता हुई। वास्तव में ब्राह्मण सभा ने जो उक्त प्रस्ताव पारित किया, उसमें आश्चर्य की ऐसी कोई बात नहीं, क्योंकि, टाई लगाये हुए, बम्बई के कई बी० ए०, एम ए० शिक्षित एवं अशिक्षित ब्राह्मण, ईरानी उपहारगृहों में चाय पीते-पीते जिस कोंकण प्रदेश को 'पिछड़ा हुआ एवं पुराणपन्थी प्रदेश' कहकर उसे तुच्छवत् समझते हैं, उसी कोंकण प्रदेश के रत्नागिरी नामक स्थान पर संगठन आन्दोलन के परिणामस्वरूप अछूतों के कलापथक सार्वजनिक गणेशजी के केवल दर्शन ही नहीं तो जिस पालकी में वे विराजमान होते हैं उस पालकी को उठा भी सकते हैं, वैसे ही नासिक जसे धर्म का केन्द्र माने हुए तीर्थक्षेत्र में गत तीन वर्षों से ब्राह्मण आदि स्पृश्यों की समस्त झाँकियों के आगे अछूतों के गणेशजी की झाँकी हजारों लोगों के चल समारोह में सुसज्जित होती है। ऐसी अवस्था में ईरानी उपहारगृहों में चाय पीने वाले, ट्राम एवं रेल-गाड़ियों में रात-दिन यात्रा करने वाले, मुकटे (कौषेयवस्त्र) को या संध्यापूजन की आचमनी को, पुरातन पण्डित अछूतों को जितना अस्पृश्य मानते हैं उससे भी अधिक अस्पृश्य मानने वाले, सैंकड़ों अधपगले ब्राह्मणों एवं अनेक प्रामाणिक सुधारवादियों के इस बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगर को इस बात पर विचार करना पड़े कि अछूतों के कलापथक को श्रीगणेशजी के दर्शनमात्र की भी अनुमति दी जाये या नहीं, यह निश्चय ही लज्जास्पद अवस्था है। कहते क्या हैं कि यदि अछूतों को भगवत्-दर्शन करने दिया जाये तो भगवान् ही बिटल जायेंगे ? जिस ब्राह्मण जाति ने दर्शन-शास्त्र का सृजन किया ऐसी उसकी विजयदुन्दुभी सारे संसार में निनादित है, उसी ब्राह्मण जाति को इस विधान पर चर्चा करनी पड़ती है यह निश्चित ही अत्यन्त लज्जा की बात ही है। जो ब्रह्मज्ञान हो उसे ही ब्राह्मण कहा जाता है न ? तो फिर जिसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ हो उसका यह विधान कि भक्त के भगवत्दर्शन मात्र से ही भगवान् बिटल जाते हैं क्या वैसा ही हास्यास्पद नहीं है जैसा दिन को रात कहना ? और यदि, ऐसा कहो कि, ब्रह्मज्ञान के बिना भी ब्राह्मणत्व प्राप्त हो सकता है, तो फिर, जब मानवजाति के देह-इन्द्रियादि सूचक चिह्न समान ही होते हैं तब इन नामधारी—तथाकथित ब्राह्मणों में एवं अछूतों में महत्व का ऐसा अन्तर ही भला कौनसा रहा ? ऐसी अवस्था में ब्रह्मज्ञान या सत्चरित्र या तीव्र जनहित तत्परता न होते हुए भी स्वतः को ब्राह्मण कहलाने की इच्छा रखने वालों में एवं साधारण अछूतों में जो एकमेव अन्तर बचा रहता है वह यह कि, पहले का हृदय अहंकार के कारण पत्थर से भी कठोर बन जाता है पर दूसरे का कम से कम उतने प्रमाण में तो कठोर नहीं होता। अछूत हिन्दू पापी न होने पर भी स्वतः के पतित होने की भावना से स्वभावतः ही लीन होता है; तो उपर्युक्त नामधारी ब्राह्मण पतित होने पर भी स्वतः के पावक होने की भावना से स्वभावतः ही उद्दण्ड होता है और इसीलिए अस्पृश्यों से भी अधिक अस्पृश्य होता है।

यदि ऐसा न होता तो 'भगवत्दर्शन से भगवान् बिटल जाते हैं' ऐसा प्रश्न ब्राह्मणों में उपस्थित ही नहीं होता। जो भगवान् हैं, वह बिटल ही कैसे सकते हैं ? अजी, भगवान यदि अछूतों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पर्शमात्र से बिटल जाते हैं, तो जिस दिन उसी भगवान् ने अछूत को उत्पन्न किया उसी दिन उस अछूत के स्पर्श से वह बिटल चुके हैं। ईश्वर का सर्वाधिक प्रिय नाम है 'पतितपावन'। तो फिर उसके स्पर्श से पतित पावन होंगे या उन पतितों के स्पर्श से वह पावन ही पतित होगा ? क्या वास्तव में हमारा भगवान् इस प्रकार पिलपिला मोमना है कि पापी के उत्तप्त तामसी हस्थस्पर्श के दाहमात्र से ही वह पिघल जाये ? अजी महाराज, यह तो आप स्वय ही आपके ईश्वर की वह भर्त्सना कर रहे हैं कि जिसे सुनकर नास्तिक भी लज्जित हो जाये ? नहीं। हम हिन्दुओं के भगवान इस प्रकार पिलपिले मोमने नहीं हैं। उनकी मूर्ति, उनका चित्र भले ही गोबर या मोम का हो सकता है, पर हमारे वे ईश्वर पतित के स्पर्शमात्र से पतित होने वाले न होकर, प्रत्युत अपने दिव्य स्पर्श से पतितों को पावन करने वाले हैं, और इसीलिए उन्हें ईश्वर कहा जाता है। वे 'अच्छेद्योयम्, अदाह्योयम्, अक्लेद्योशोष्यएवच ?' इस प्रकार के हैं। उनका शस्त्र से विच्छेदन सम्भव नहीं, वैसे ही स्पर्शमात्र से उनका बिटलना भी सम्भव नहीं।

आप ब्राह्मण लोग जिस मुख से स्वयं को भूदेव कहते हो उसी मुख से यह भी कहते हो कि बसोड़ आदि के स्पर्श से ही नहीं, तो केवल दर्शनमात्र से आप स्वयं एवं आप जैसे भूदेवों के देव भी बिटल जायेंगे ? जब ईश्वर पतितपावन है तो फिर आपको भी पतितपावन ही होना चाहिये। पतित यदि आपको स्पर्श करे तो उस पतित को ही पावन हो जाना चाहिये। फिर इसके विपरीत आप ही उसके स्पर्श से भय क्यों खाते हो, उसके दर्शनमात्र से स्वयं के ही पतित हो जाने का भय क्यों रखते हो ? टण्डक यदि अग्नि को स्पर्श करे तो क्या कभी अग्नि ठण्डी हो जाती है ? यदि हो जाती है तो वह अग्नि ही नहीं। दीपक को स्पर्श करने पर अंधकार दिव्य हो जाता है या दीपक अन्ध हो जाता है ? यदि वह अन्ध हो जाता है तो फिर वह दीपक ही नहीं। नाला यदि गंगानद को स्पर्श करे तो क्या वह गंगा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नद अपवित्र हो जाता है ? यदि वह अपवित्र हो जाता हो तो "गंगागंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि मुच्यते सर्वपापेभ्यो" इस स्मृति को भ्रान्त समझा जाना चाहिये ? जो नाले को पावन कर सकती है वही भगीरथी, वैसे ही पतितों के दर्शन से जो पतितों को ही पवित्र करते हैं वे ही भगवान् हैं ? उसी का गान "वेदैस्सांगपदक्रमोपनिषदैः" इस प्रकार हमारी ब्राह्मण जाति के पितृपितामहों ने किया है ? श्रीहरि का स्पर्श होते ही गजेन्द्र जैसे पशु का भी उद्धार हुआ, इस कथा को प्रामाणिक मानने वाले बसोड़ माँग आदि अपने ही रक्त के, अपने ही बीज के, अपने ही हिन्दूधर्म के एवं अपने ही हिन्दू-देश के बन्धु—'जिनकी उत्पत्ति प्रतिलोम विवाह से हुई है ऐसा आधार स्मृति में वर्णित है' ऐसे स्वतः के सगे बन्धु, उन्हें भगवान् की मूर्ति को स्पर्श करने देने की बात तो छोड़िये पर उनके भगवत्दर्शन पर ही प्रतिबन्ध लगा दिया जाये यह कितने दुःख एवं अज्ञानी दम्भ की बात है ?

यदि दृष्टिकोण केवल शुद्धता का ही हो तो फिर ब्राह्मण आदि स्पृश्यों में जो पापी हैं उन्हें भी मन्दिर-प्रवेश से प्रतिबन्धित किया जाये और उसी प्रकार बसोड़ आदि पापियों को भी तथा जिस प्रकार ब्राह्मणादि स्पृश्य जातियों के सुज्ञात, सुशील एवं सज्जन लोगों को भगवत्दर्शन प्राप्त होते हैं वैसे ही बसोड़ आदि अछूत जातियों के सज्जनों को भी प्राप्त होने दो । क्योंकि बसोड़ आदि अछूत जातियों में भी ऐसे धर्मभीरु लोग एवं सच्चरित्र तीर्थयात्री तथा पराक्रमी लोग हैं कि जिनके चरणों की धूल स्पृश्य जाति के अनेक जयचन्दों को अपने मस्तक पर धारण करनी चाहिए । इस प्रकार बसोड़ या माँग या चमार या अन्य किसी जाति पर अशुद्धता का निमित्त लेकर अस्पृश्यता की मुद्रा नहीं ठोकी जा सकती । यदि समस्या अशुद्धता की ही हो तो उस तीर्थयात्री-मण्डली का प्रत्येक बसोड़ बालक प्रतिदिन प्रातः किसी बढ़िया-से-बढ़िया साबुन से सबके सम्मुख नहायेगा, वस्त्रों को धोकर उनको परिधान करेगा एवं जिसके प्रभाव से "शतजन्मकृतं पापं विनश्यति न संशयः ।" ऐसे उस रामनाम का जाप कर वह आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगणेशजी मंदिर में प्रवेश करेगा—फिर तो कोई आपत्ति नहीं ? जिस श्रीगणेश मंदिर में अस्नात् चोट्टे-पोट्टे भी केवलमात्र ब्राह्मणत्व की छाप के आधार पर ही प्रवेश पाते हैं एवं उनके दर्शन से श्रीगणेशजी भी नहीं विटलते, उसी श्रीगणेश मंदिर में ऐसे सुस्नात बसोड़ बन्धुओं के हार्दिक भजन का कार्यक्रम यदि आयोजित किया जाये तो न तो आकाश से वज्राघात होगा, न ही भूचाल ही आएगा, ऐसा किसी शपथ पर भी कहने में हमें कोई आपत्ति नहीं है।

अजी बसोड़ों की तो बात ही छोड़िये—पर जिसकी माता प्रति-दिन प्रातः सार्वजनिक मलक्षालन का अत्यन्त जनहितकारी कार्य करती है ऐसा एक भंगी बालक रत्नागिरी के 'पूर्वास्पृश्यों' के कला-पथक का प्रमुख है। उसका उच्चारण, उसके आचार, उसके विचार तथा उसकी बुद्धिमत्ता को देखकर लोग इतने आश्वस्त हो जाते हैं कि उन्हें वास्तविक स्थिति बताने पर भी वे उस पर विश्वास नहीं कर पाते। वह भंगी बालक विगत गणेशचौदस की शोभा-यात्रा में रत्नागिरी के सार्वजनिक उत्सव के श्रीगणेशजी की मूर्ति की झाँकी के साथ ही नहीं तो ब्राह्मण जाति के विशिष्ट आयोजन की श्रीगणेश मूर्ति की पालकी से सटकर ही उस जनसमूह में भजन गा रहा था। रात्रि के कार्यक्रमों में सब लोगों में सम्मिलित होकर हजारों स्पृश्यों के कंधों से कंधा भिड़ाकर मंदिर के प्रांगण में एवं बरामदे में 'हिन्दुत्व' की जयकार निनादित कर रहा था। शोभायात्रा के भजन-मण्डलियों में, भजन गाने में मग्न था—परन्तु फिर भी 'भंगी को' दर्शन करने की अनुमति दी इस कारण से श्रीगणेशजी अब तक तो रुष्ट नहीं हुए हैं, या रत्नागिरी पर आकाश से कोई विद्युत्पात भी नहीं हुआ है, या धरती दुभंग होकर उसने रत्नागिरी को निगल भी नहीं लिया है ?

वास्तव में देखा जाय तो अस्पृश्यता से होने वाली हानियों के सम्बन्ध में गत दो-तीन वर्षों में इतनी चर्चा हो चुकी है कि उसका समर्थन करने लायक एक भी तर्क अब किसी के पास बचा नहीं है। आज भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि कुछ प्रामाणिक हिन्दुओं के लिये अस्पृश्य को स्पर्श करना जान पर आता हो, तो वह युक्तिसंगत या सैद्धान्तिक प्रतिपादन के आधार पर न होकर, केवल अभ्यस्तता के प्रभाव के कारण ही है। जैसे बीड़ी की टेव लगने पर बीड़ी खराब होती है यह ज्ञात होने पर भी वह टेव नहीं छुटती ? वैसे ही केवल रूढ़ि के रूप में वह अस्पृश्यता बनी रहे ऐसा लगता है—स्मृतियाँ कहती हैं इसलिए नहीं।

इस पर यदि कोई यह कहे कि स्मृतियाँ वैसी हैं या नहीं, तो उसके लिये इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि स्मृतियाँ तो ऐसी भी हैं, "न वदेद्यावनी भाषां प्राणैः कंठगतैरपि ?" तो फिर कितने ब्राह्मण पुत्रों ने, क्षत्रियपुत्रों ने आंग्लभाषा का अध्ययन त्याग दिया है ? तो फिर म्लेच्छों की दासता में रहने वाले, मुसलमानों को अपनी-अपनी बहू-बेटियाँ अपहृत करने देने वाले, अपने मंदिर एवं सिंहासनों को विधर्मी, विदेशी उन्माद जब पैरों तले रौंद रहा हो तब कुत्तों के समान पूंछ हिलाकर, रोटी के टुकड़े चाटकर जीवित रहने वाले, ऐसे, सदा ही अंग्रेज साहब की कचहरी में जुशाले की खाने वाले लिपिक से लेकर दुशाला ओढ़कर कालेजों में योरुपियनों को वेद-विक्रय करने वाले महामहोपाध्याय तक के वर्तमान पीढ़ी के किसी भी हिन्दू को स्मृति का निमित्त करने का किंचित्मात्र भी अधिकार हो सकता है क्या ? अस्पृश्यों के सन्दर्भ में स्मृति का स्मरण आते ही हम स्पष्टता से अपनी आत्मा से पूछें कि, आज, प्रातः से सन्ध्या तक मैंने कितने कर्म स्मृति का भय रखकर किये ? इस प्रकार स्वतः से ही पूछने पर प्रत्येक स्मृतिभक्त को यह दिखाई देगा कि अस्पृश्यता के पालन की बात करने वाले प्रत्येक स्मृतिश्लोक के पीछे अस्पृश्यता के परित्याग की बात करने वाले स्मृतिश्लोकों के आधार हाथ धोकर पड़े हुए हैं।

ऐ ब्राह्मणो, ऐ क्षत्रियो, ये हमारे ही धर्म के, हमारे ही रक्त के, सात करोड़ बन्धु आज भगवत्पूजन हेतु अन्तरप्रवेश की करुणा-प्रार्थना आपसे कर रहे हैं। न्याय के लिए, प्रेम के लिए उन्हें अनुमति दो, अन्तरप्रवेश करने दो। हम कुत्ते को छूते हैं, उसके मुंह से हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंह भी लगाते हैं—यह तो ठीक हमारे जैसे ही मानव हैं, हमारे हिन्दूधर्म के जगन्नाथजी के तीर्थयात्री हैं! इसके उपरान्त भी यदि प्रेम से न चाहो तो कम-से-कम भय से ही उन्हें भगवत्दर्शन करने दो। यह ध्यान में रखो, कि आज वे आपके भगवान् का 'भजन' गाने का सत्याग्रह करना चाहते हैं, पर कल दुष्टों, म्लेच्छों के पाखण्ड के वशीभूत होकर, भगवान् की मूर्ति का 'भजन' करने का शस्त्राग्रह करने हेतु वे सिद्ध होंगे। विधर्मी उनका बुद्धिभेद कर रहे हैं—आठ करोड़ हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई बन चुके हैं, उन्हीं के अनुसार अठारह करोड़ मूर्तिभंजक आप उत्पन्न करना चाहते हैं क्या? जो भी अछूत इस छल के परिणामस्वरूप भ्रष्ट होगा, वह उसकी तथा हमारे हिन्दूराष्ट्र की आत्मा का भी घात करने में कभी न चूकेगा? इसे कितनी बार कहें—किस प्रकार कहें? जिसको आप अपना भगवान् समझते हैं, उसकी भक्ति बढ़ाना यह आपका कर्त्तव्य है, या घटाना?

केनिया में विधर्मी एवं विदेशी यूरोपियन आपको अछूत समझते हैं, उन पर तो आप जल-भुन जाते हैं। वह तो न्यायपूर्ण ही है—परन्तु, फिर जब आप अपने उसी मुख से उसी तर्क को उलटाकर, आपके ही इन स्वधर्मियों का हमारे—उनके स्वदेश में ही, अस्पृश्य कहकर धिक्कार करते हैं, तब वह परमेश्वर आपके इस अहंकारी पाखण्ड से सन्तुष्ट ही होता होगा नहीं क्या? आपका यह अन्याय श्रुतिस्मृति को सम्मत ही होगा, नहीं क्या? इस पर कुछ तो विचार करो। 'अब कहाँ की स्मृति और श्रुति?' जब स्मृति एवं श्रुति का अस्तित्व ही लुप्त होने की, हिन्दूराष्ट्र नामशेष होने की, स्थिति आ पहुँची है तब 'जिन-जिन भी उपायों से उनकी रक्षा सम्भव हो, इस हिन्दूराष्ट्र को जीवित एवं विवर्धमान रखा जा सकता हो, वह प्रत्येक साधन निश्चित रूप से स्मार्त एवं श्रौत ही है।' पुरानी स्मृतियाँ अनुकूल हैं ही, पर यदि न भी हों तो नवीन बनाई जानी चाहिये—स्मृति राष्ट्र के लिये हैं—जिनसे राष्ट्रनाश होता हो वे तो स्मृतियाँ ही नहीं कही जा सकतीं, वे तो स्मृतिभ्रम हैं? जो धारणा नहीं करता वह धर्म हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं सकता, वह तो विधर्म है।

ईश्वर पतितपावन है, इसीलिये पतित को उसका दर्शन करने दो, न्याय के लिये करने दो। अछूत हमारे हिन्दूधर्मबन्धु हैं, इसीलिये उन्हें भगवत्दर्शन करने दो, विधर्म के पंजे में फँसकर, वे नरक में न जायें इसीलिये उन्हें भगवत्दर्शन करने दो। केवल भगवत्दर्शन और वह भी दूर से। 'अछूतों की यह माँग भी' जिस व्यक्ति को बहुत बड़ी दिखाई देती है, वह मनुष्य ही वास्तव में अछूत है एवं पतित भी। फिर भले ही उसे चारों वेद कण्ठस्थ क्यों न हों ?

'मानव में पारस्परिक अस्पृश्यत्व एक बार हो सकता है, पर भगवान् के दर्शन की अस्पृश्यता ? भक्त के दर्शनमात्र से भगवान् विटल जाते हैं ? पाखण्ड ! पाखण्ड ! निरा पाखण्ड ! प्रत्येक हिन्दू को हिन्दूदेवता के दर्शन करने का अधिकार है, क्योंकि, जो केवल दर्शनमात्र से विटल जाते हैं, वे तो भगवान् हो ही नहीं सकते ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐ खड्ग, तेरी विजय हो !

स्थानाभाव एवं समयाभाव के कारण प्रस्तुत लेखन में मैं इस ऊहापोह में पड़ना नहीं चाहता कि नैतिक कृत्य किसे कहा जाये। नीति का शास्त्र, आत्म-स्फूर्ति-साक्षात्कार या व्यवहार की सुविधाओं के कारण भले ही अन्य किसी भी सिद्धान्त पर अधिष्ठित क्यों न हो, पर उसका वह व्यावहारिक पक्ष, जिसे 'समस्त नीतिशास्त्रवेत्ता' एकमुख से मान्यता देते हैं, जिसके आधार से नीति-अनीति, सद्गुण-दुर्गुण या अच्छा-बुरा इस प्रकार का वर्गीकरण सम्भव होता है—वह कसौटी केवल व्यावहारिक बातों पर ही अधिष्ठित की गई है। और वह कसौटी यही है कि मानवी जीवन के लिए जो भी विचार या आचार उपकारक होते हैं उन सभी आचार-विचारों को नीति या सद्गुण कहा जाये तथा जो-जो भी उसके विरुद्ध हो उस प्रत्येक को अनीति या दुर्गुण माना जाये। इसी न्याय को समस्त नीतिशास्त्र-वेत्ताओं ने मान्य किया है। इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि, नीति कल्पना प्रमुखतः मानवी जीवन पर ही अधिष्ठित है। पूर्णतः व्यावहारिक एवं पूर्णतः आधारभूत इस प्रकार की उक्त कसौटी पर यदि परखा जाये तो जिस आत्यन्तिक अहिंसावाद में 'आक्रमण' के विरुद्ध किया हुआ सशस्त्र प्रतिकार भी त्याज्य माना जाता है वह अहिंसा-तत्त्वज्ञान निरा अव्यवहार्य तथा मानवी जीवन के लिए घातक अतएव पूर्णतः अनीतिमय ही माना जाना चाहिये। जहाँ छोटे-छोटे बालक निद्रावस्थ हों, ऐसे स्थान पर यदि साँप निकले या किसी मेले की भीड़भाड़ में कोई पागल कुत्ता घुस जाये, तो उसको मारने में सक्षम होने पर भी जब आप केवल आत्यन्तिक अहिंसा के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए उसे जान से नहीं मारते हो, तब आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस कृत्य से वह साँप या पागल कुत्ता जीवित बचता है और इसीलिये दूसरों को काटकर उनके प्राण लेता है। एक साँप या कुत्ते की प्राणरक्षा के हित आप अनेक मानवों के प्राणरक्षण को टाल देते हो और उसकी सुविधानुसार तथा अवकाशानुसार अनेक मानवों के प्राण लेने के लिए उसे स्वतन्त्र रखते हो। इस प्रकार आप दोहरे पाप के अधिकारी हो जाते हो। इसके विपरीत आप यदि उस कुत्ते या साँप को तत्क्षण मार डालते हो तो, किसी भी जीव का, किसी भी कारण के लिए, कभी भी वध नहीं किया जाये इस निजसिद्धान्त के विरुद्ध व्यवहार करने के पाप के अधिकारी आप हो जाते हैं। इस एक ही उदाहरण से यह सिद्ध हो जाता है कि आत्यन्तिक अहिंसा का सिद्धान्त निरा अव्यवहारी है, मानवी जीवन के लिये घातक है, अतएव पूर्णतः अनीतिकारक है। जो बात वैयक्तिक सन्दर्भ में लागू होती है, वह राष्ट्र के सन्दर्भ में भी लागू होती है। यह भी ध्यान में रखा जाये कि जो लोग धर्म, अनत्याचार, अहिंसा आदि का आत्यन्तिक गुणगान करते हैं, उन्हें भी उक्त नियमों के लिए अपवाद तो स्वीकार करने ही पड़े हैं। किसी भी प्रकार के अन्यायी आक्रमण के विरुद्ध किये जाने वाले सशस्त्र प्रतिकार का वे निषेध नहीं करते, और इस प्रकार का निषेधकरण सही अर्थ में अहिंसा का गुण हो भी नहीं सकता।

सीमित अहिंसा गुण है तो आत्यन्तिक अहिंसा पाप है !

तथापि, सीमित अहिंसा भर समग्र रूप से मानव-जीवन के हेतु अत्यन्त उपकारी होने के कारण वह एक महत्त्वपूर्ण गुण होकर, अपना व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन, इतना ही नहीं तो अपनी समस्त सुख-सुविधाएँ उन्हीं पर अवलम्बित हैं, परन्तु किसी भी समय या प्रसंग में किया जाने वाला आत्यन्तिक अहिंसा का पालन व्यक्तिगत या राष्ट्रीय स्वरूप के मानवी जीवन के लिए अत्यन्त हानिकारी होकर अनीतिकारक भी है, अतएव वह त्याज्य मानी जानी चाहिये। जिन नीतिशास्त्रवेत्ताओं ने समर्याद अहिंसा को एक महत्त्वपूर्ण सद्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुण माना, उन्होंने ही आत्यन्तिक स्वरूप की अहिंसा को त्याज्य समझकर उसका निषेध भी किया है।

जैनबौद्धों की अहिंसा गांधीजी की अहिंसा से भिन्न है !

बौद्धधर्म या जैनधर्म द्वारा प्रतिपादित अहिंसाधर्म, गांधीजी द्वारा प्रतिपादित उस आत्यन्तिक अहिंसाधर्म के सर्वथा विरुद्ध है जो सभी प्रकार की परिस्थितियों में सशस्त्र प्रतिकार का निषेध करती है। जिन जैन लोगों ने राज्य स्थापित किये, वीर एवं वीरांगनाओं को निर्मित किया, जिन्होंने समरभूमि पर शस्त्रों से युद्ध किये तथा जिन जैन सेनापतियों ने जैन सैनिकों की सेनाएँ लड़ाईं, उनका जैन आचार्यों ने कहीं भी तथा कभी भी निषेध नहीं किया है। यह एक ही बात सिद्ध करती है कि उनकी अहिंसा गांधीवादी घृणित अहिंसा से भिन्न थी। इतना ही नहीं तो अन्यायकारी आक्रमण का सशस्त्र प्रतिकार करना केवल न्याय ही न होकर आवश्यक भी है, ऐसा जैनधर्म का प्रकट प्रतिपादन है। यदि कोई सशस्त्र आततायी मनुष्य किसी साधु की हत्या करने का प्रयास करे, तो उस साधु के प्राणरक्षणहेतु उस आततायी को मार डालना यदि आवश्यक हो तो उसे अवश्य ही मारना चाहिये, क्योंकि, उस प्रकार की हिंसा एक प्रकार से अहिंसा ही है ऐसा उसका समर्थन जैनग्रन्थों ने किया है। मनुस्मृति के कथनानुसार ही जैनग्रन्थों का भी यह कथन है कि ऐसी परिस्थिति में हत्या का पाप उसे लगता है जो मूलभूत हत्यारा है, न कि उसे, जो हत्यारे का वध करने वाला है, 'मन्युस्तन् मन्युमर्हति।' भगवान् बुद्ध ने भी इसी प्रकार का उपदेश किया है। एक बार किसी टोली के नेता भगवान् बुद्ध के पास पहुँचे और किसी अन्य टोली के लोगों के आक्रमण के विरुद्ध उनका सशस्त्र प्रतिकार करने की अनुज्ञा उनसे माँगने लगे, तब तथागत बुद्ध ने उन्हें सशस्त्र प्रतिकार करने की आज्ञा दी। भगवान् बुद्ध बोले, "सशस्त्र आक्रमण के प्रतिकार स्वरूप युद्ध करने में क्षत्रियों के लिए कोई भी बाधा नहीं है। यदि सत्कार्य के लिए वे सशस्त्र होकर लड़ते हैं तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें कोई पाप नहीं लगेगा।"

मानव का संरक्षक खड्‌ग !

प्रकृति में आत्यन्तिक अहिंसा के लिए कहीं भी स्थान है यह बात पूर्णतः सत्य है, फिर इसे आप प्रकृति का नियम मानें या ईश्वर की इच्छा। क्योंकि, यदि ऐसा न होता तो यह मानवजीव जीवित ही नहीं रहता, या अधिक-से-अधिक किसी भीरु की भाँति या कीड़े की भाँति पृथ्वी की पीठ पर जान बचाते हुए कहीं भी पड़ा रहता। परन्तु चूंकि अपने मौलिक सामर्थ्य में उसने कृत्रिम सामर्थ्य को भी जोड़ दिया, इसीलिये वह वर्तमान स्थिति को प्राप्त हो सका है। भौतिक-शास्त्र के अनुसार जब जीव को मानवजीवन प्राप्त हुआ, तब उसके चहुँओर अत्यन्त क्रूर पशु एवं रेंगने वाले जीव फैले हुए थे। व्यक्तिगत रूप में यदि देखा जाये, तो उनके सम्मुख वह अत्यन्त ही दुर्बल जीव था। जब वह प्रथमतः उत्पन्न हुआ, तब उसके चहुँओर के प्रचण्ड, विस्तीर्ण, वन में जीवित रहने हेतु जी-तोड़ यत्न करने वाले समस्त जीवों में दैहिक रूप से मनुष्य नामक जीव ही अत्यन्त दुर्बल था। उसके न तो विषैले दाँत थे न ही सूंड, उसके न तो सींग थे न ही तीक्ष्ण नाखून। हम गाय को स्वभावतः ही एवं देह से भी अत्यन्त निरुपद्रवी एवं स्वसंरक्षण हेतु अत्यन्त असमर्थ इस प्रकार का जीव समझते हैं, तथापि यदि गाय तथा मनुष्य इन दोनों की लड़ाई हो तो उपर्युक्त विशेषणों वाली गाय भी अपने सींग मनुष्य के पेट में घोंपकर उसे मार डालेगी। पर, मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। मनुष्य की महानता यदि किसी बात में होगी तो वह है उन कृत्रिम शस्त्रों में जिनका कि निर्माण अपने दैहिक अंगों को समर्थ कर देने हेतु उसने किया है। इसीलिये वह सभी प्रकार के पशुओं पर मात कर सका। बाघ, सिंह, हाथी, भेड़िये, साँप, कछुए आदि सब जीवों पर मात कर उसने भूमि एवं जल पर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित किया। ठीक प्राचीन काल से लेकर लौहयुग तक के प्रदीर्घ काल में मानव अन्य जीवों पर जो अपनी शह रख सका, अपना विस्तार बढ़ा सका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा इस पृथ्वी का स्वामी बन सका, वह केवल इन शस्त्रों की सहायता से ही ! वास्तव में स्वतः के संरक्षण हेतु उत्पन्न किया हुआ यह खड्ग ही मानव का सही संरक्षक बना हुआ है।

प्रकृति के नियम ही शाश्वत् नियम हैं !

आत्यन्तिक अहिंसावाद का स्वीकार करना एवं उसके लिए किसी भी प्रकार के आक्रमण के प्रतिकार का निषेध करना, यह महात्मापद का या साधुत्व का लक्षण न होकर यह तो केवल मिथ्यावाद या मूर्खत्व का लक्षण है। पाशवी जगत् से संघर्ष करने में जिस बात का मनुष्य ने उपयोग किया वही बात मानवजाति के आन्तरिक सघर्ष में विजित होकर जीवित रहने के लिये उसके उपयोग में आई। एक टोली का दूसरी टोली से, एक वंश का दूसरे वंश से या एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से होने वाले संघर्ष का अब तक का इतिहास हमारे सम्मुख यही तथ्य रखता है। इतिहास के प्रथम पृष्ठ से अन्तिम पृष्ठ तक जो एक ही बात सिद्ध हुई दिखाई देती है वह यह कि विभिन्न राष्ट्रों में भले ही अन्य बातों में समानता हो, परन्तु जो राष्ट्र सैनिक दृष्टि से समर्थ होंगे केवल वे ही जीवित रहेंगे तथा जो सैनिक दृष्टि से कमकुवत सिद्ध होंगे वे गुलामी में सड़ते रहेंगे या नामशेष हो जाएँगे। संसार के इतिहास में हम एक नया विशिष्ट अध्याय जोड़ने वाले हैं, एक नया दर्शन प्रस्तुत करने वाले हैं, आदि सब व्यर्थ की बातें हैं। यह सम्भव है कि आप इतिहास में कुछ पृष्ठ जोड़ दें, पर प्रकृति का जो नियम है उसमें आप किंचित्मात्र भी परिवर्तन नहीं ला सकते। अजी, अधिक क्या बतायें, पर यदि आज भी हम मानव, बाघ, सियार आदि को ऐसा कोरा चेक लिखकर दे दें कि, हम पूर्णतः अहिंसावादी ही बने रहेंगे, किसी भी जीव की कभी भी हिंसा नहीं करेंगे तथा शस्त्र नहीं उठायेंगे, तो वे सियार और बाघ भी तुम्हारे मन्दिर और मस्जिदें, तुम्हारी संस्कृति, अन्न से लहलहाते तुम्हारे खेत, तुम्हारे द्वारा निर्मित भवन, आश्रम आदि सबको ध्वस्त कर देंगे—और बारह वर्ष की समयावधि में ही साधु एवं पापी ऐसे सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवों को खाकर उनका सफ़ाया कर देंगे। प्रकृति का नियम ही इस प्रकार का होने से, ऐसे आत्यन्तिक अहिंसा का, मानवी जीवन के लिए घातक होने वाला तथा आक्रमण का भी सशस्त्र प्रतिकार न करो, इस प्रकार कहने वाला दर्शन कितना अनीतिकारी एवं पापकारी है इसे क्या अलग से बताने की भी कोई आवश्यकता है?

व्यर्थ की कल्पना!

फिर भी आश्चर्य इस बात पर लगता है कि जो लोग आत्यन्तिक अहिंसा के सिद्धान्त को अव्यवहार्य समझते हैं और इसीलिए उसका निषेध भी करते हैं वे लोग ही यह बोल जाते हैं कि यदि हमारे जैसे व्यवहारदक्ष लोगों के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त अव्यवहार्य है तो भी मूलतः वह नीति का लक्षण ही है और जो व्यक्ति इस सिद्धांत को अंगीकृत करेगा वह महात्मा धन्य है। वह मानवश्रेष्ठों के सद्गुणों से पूर्णतः लिप्त है। ऐसी मनोप्रवृत्ति को त्वरित ही बदलना चाहिये, क्योंकि सर्वसाधारण जनता ऐसे विचित्र मतों का प्रतिपादन करनेवाले इन प्रेषितों को देवदूत समझने लगती है तथा ऐसा मानने लगती है कि मानव-जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए ही उन्होंने कुछ नवीन नीति-नियमों को जन्म दिया है। और, जो लोग उनके द्वारा प्रतिपादित नीति के अनुसार आचरण कर नहीं सकते वे लोग उनकी उक्त विचित्रता को साधुत्व का लक्षण समझ बैठते हैं और फिर उन प्रतिपादकों को भी ऐसा लगने लगता है कि वे कोई पहुँचे हुए बड़े महात्मा हैं। बस, इस अहंकार में मस्त होकर गम्भीरता का स्वांग रचकर भारतीय जनता को वे यह कहने लग जाते हैं कि हाथ में लकड़ी रखना भी पाप है। इतना ही नहीं तो यह कहते फिरते हैं कि भविष्य में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त हिन्दुस्थान के लिए एक भी सैनिक की आवश्यकता न होगी या हिन्दुस्थान की सीमा-रक्षा हेतु एक भी युद्धपोत रखना नहीं पड़ेगा। विदेशी जुए को हटाकर हिन्दुस्थान की स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का इनका शस्त्र तो है चरखा। और ये सोचते हैं कि यदि हमारा यह हिन्दुस्थान इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्यन्तिक अहिंसा की कल्पना पर विश्वास रखेगा और उसके अनुसार सेना, जलसेना या नभसेना को नहीं रखेगा तो संसार का कोई भी राष्ट्र हिन्दुस्थान पर आक्रमण नहीं करेगा या यदि कोई करेगा भी तो गरर-गरर घूमने वाले चरखे की धुन पर गाना गाने वाली देश-सेविकाओं का जत्था खड़ा कर उन्हें वापस जाने के लिए बाध्य किया जाएगा।

केवल साक्षेप अहिंसा ही उचित है

जब बातें इस सीमा तक पहुँच जाती हैं तथा इनके जैसे भंगेड़ी लोग सर्वसाधारण भोलेभाले लोगों के प्रामाणिक प्रतिनिधि होकर गोलमेज़ परिषदों (राउंडटेबल कॉन्फ्रेंसेस) जैसी परिषदों में जाते हैं और हिन्दुस्थान के नाम पर बड़ी गम्भीरता से विदेशों में भी ऐसे बुद्धूपन के विधान करने लगते हैं तब विदेशी राजनीतिज्ञ तथा यूरप-अमरीका की सर्वसाधारण जनता भी उनके इस बुद्धूपन की हँसी उड़ाती है। और इसीलिए इन विचारों की बड़ी गम्भीरता से खबर लेने का समय आ चुका है। इन विचारों के प्लेग को—महामारी को यथासंभव शीघ्र ही समाधिस्थ करना होगा—गाड़ देना होगा। हमें चाहिए कि इन लोगों को क्षमायाचना के स्वर में नहीं तो स्पष्ट शब्दों में हम यह कह दें कि आत्यन्तिक अहिंसा का तुम्हारा यह ढकोसला पूर्णतः अव्यवहार्य एवं अनैतिक तो है ही पर साथ ही, इसमें साधुत्व तनिक भी न होकर यह मूर्खता से भर पूर्णतः लिप्त अवश्य है। ये कहते हैं कि जब संसार के सब लोग आत्यन्तिक अहिंसा का पालन करेंगे तब संसार में युद्ध होगा ही नहीं, और तब सशस्त्र सैनिकों की आवश्यकता भी न होगी। परन्तु इस तत्वज्ञान के कथन के लिए विशेष बुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है। यह तो ऐसा ही कथन है जैसे यदि प्रत्येक मनुष्य चिरंजीव होने की सोचे तो संसार में कोई भी मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होगा ही नहीं। 'आपके आत्यन्तिक' अहिंसा के सिद्धान्त का हम जब धिक्कार करते हैं तब हम वह धिक्कार इसलिए नहीं करते कि साधुत्व की दृष्टि से हम आपसे कुछ कम हैं' वरन् इसीलिये करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि आपकी अपेक्षा हम अधिक बुद्धिमान हैं। सीमित अहिंसावाद तो हमारा ध्येय है, इसीलिए मानवरक्षण का प्रथम साधन इस रूप में केवल संरक्षण हेतु ही हम उस तलवार की उपासना करते हैं। इसी विचार से हिन्दू लोग शक्तिदेवता कालीमाता के प्रतीक के रूप में शस्त्रों की पूजा करते हैं। गुरु गोविन्दसिंहजी ने स्वतः की तलवार के सम्बोधन में रचे हुए काव्य में इस प्रकार कहा है—

सुखसंताकरणम् दुर्मतिहरणम् खलदलदलनम् जयतेग्रम्।

'और हम भी इस महान् गुरु के गाने में अपना स्वर मिलाकर यह कहते हैं कि, "ऐ खड्ग, तेरी विजय हो!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मजात जाति-भेद नष्ट करना माने क्या करना ? (पूर्वार्द्ध)

जिन लोगों को जन्मजात जाति-भेद का अस्तित्व—जो वर्तमान हिन्दू समाज में प्रचलित है—इष्ट ही प्रतीत होता है, उन्हें यह दर्शाने के लिये कि वह किस प्रकार एवं कितना अनिष्ट है, हम इस लेख को लिख नहीं रहे हैं।

तो उन लोगों के उन प्रश्नों का एवं उस भय का विचार करने हेतु ही इस लेख के लेखन का हमने निश्चय किया है, जिनके लिये यह तथाकथित 'जन्मजात' परन्तु वास्तव में केवल 'पुराणपंथी' होने वाला जाति-भेद अत्यन्त अनिष्ट है और उसको तोड़ने का विधेय उन लोगों को सम्मत है, पर 'उसे तोड़ना माने आज क्या-क्या करना होगा' 'जहाँ तक हमारा स्वतः का प्रश्न है, हम उसे कहाँ से एवं कैसे प्रारम्भ करें' ऐसे प्रश्न उनके सम्मुख विद्यमान हैं तथा 'आप जाति-भेद के तोड़ने की जो बात करते हैं वह तो ठीक है; पर विगत एक हजार वर्षों से प्रचलित उक्त सामाजिक रचना को उखाड़ फेंकने पर इतनी गड़बड़ी हो जाएगी कि उस उत्पात में हिन्दूराष्ट्र का अस्तित्व भी नामशेष हो जाएगा, इस बात का भी तो कुछ विचार हो।' ऐसा एक भय होने से वे उस काम की ओर हाथ बढ़ाने में ही हिचकिचाते हैं।

पूना के मराठी समाचार-पत्र 'केसरी' में जन्मजात जाति-भेद की इष्ट-अनिष्टता के विषय पर जब से हमारी लेखमाला प्रसिद्ध हुई है एवं उक्त जाति-भेद को तोड़ने का प्रत्यक्ष प्रयोग जब से बड़े प्रमाण पर और वह भी सामुदायिक रीति से एवं बड़े धूमधाम से रत्नागिरी में हमने प्रारम्भ किया है तब से सैकड़ों लोगों ने लिखित एवं मौखिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से उपयुक्त प्रश्न हमसे पूछे हैं। दूसरी एक बात यह भी है कि जाति-भेद को तोड़ना इष्ट ही है यह मानने वाला एक बड़ा भारी वर्ग समाज में उत्पन्न हुआ है, पर उसके सम्मुख कोई निश्चित कार्यक्रम न होने से वह असमंजस में है, इसीलिये एक कामचलाऊ कार्यक्रम की रूपरेखा भी इसमें प्रस्तुत करनी है।

जन्मजात जाति-भेद के उच्चाटन के माने हैं उस ऊँच-नीचता का उच्चाटन जो जन्मजात इस रूप में केवल परिकल्पित ही है।

प्रथमतः हमें यह ध्यान में रखना होगा कि जन्मजात जाति-भेद में राष्ट्रीय दृष्टिकोण से हमें जो अनिष्टता दिखाई देती है और इसीलिये हमें उसका उच्छेदन करना है, वह प्रचलित जातियों में होने वाली जन्मजातता की केवल उपपत्ति या भावना न होकर उससे जोड़ा हुआ कल्पित ऊँच-नीचता एवं विशिष्टाधिकारों का सम्बन्ध है। हमें तो बस इतना ही करना है कि किसी व्यक्ति को, चूँकि, वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ है इसीलिये उसमें किसी विशेष गुण के न होने पर भी अग्रपूजा का, वेदोक्त का, पूर्व के निर्बन्धानुसार अवध्यत्व का आदि जो विशिष्ट जन्मजात अधिकार या सुविधाएं उसे दी जाती हैं, उन्हें भर बन्द करना है। केवल इसीलिये किसी व्यक्ति को सिंहासन एवं वेदोक्त राज्याभिषेक का अधिकारी समझना कि उसने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है जबकि उसमें आवश्यक गुण एक भी नहीं है, परन्तु छत्रपति शिवाजी के समान पराक्रमी पुरुष स्वतन्त्र राज्य की भी स्थापना क्यों न कर दें, 'फिर भी केवल वह क्षत्रिय नहीं इसी कारण से वह सिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता, उसे हम राज्याभिषेक नहीं करेंगे,' ऐसा कहना विशुद्ध मूर्खता ही नहीं तो घातक भी होने से केवल जन्म के आधार पर दिये जाने वाले क्षत्रियत्व के विशिष्ट अधिकार छीन लेने चाहिए।

किसी भी जाति को अन्य किसी जाति से मूलतः ही श्रेष्ठ या कनिष्ठ केवल इसीलिए नहीं मानना चाहिये कि वैसा पोथियों में, पुराणों में लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति-भेदों की जन्ममूलक एवं केवल कल्पित ऊँच-नीचता की यह भावना तथा प्रकट गुणों के अस्तित्व के बिना भी प्राप्त होने वाले विशिष्ट अधिकार यदि घटा दिये जायें तो प्रस्तुत जाति-भेद के जो अन्य लक्षण हैं, वे भविष्य में दीर्घकाल तक यदि अस्तित्व में रहें भी या न भी रहें तो उससे कुछ विशेष हानि नहीं होगी। वह प्रत्येक जाति अपने व्यवसाय, नाम, अपने संघ, उपर्युक्त व्याख्या के विरुद्ध न जाने वाले एवं अन्यों को उपसर्ग न देने वाले उनके विशिष्ट व्रत, कुल-धर्म, कुलाचार, गोत्र परम्परा आदि सैकड़ों जाति-विशिष्ट बन्धनों का और आगे कुछ काल तक यदि पालन करते भी रहें तो भी उससे हमारे अखिल हिन्दूराष्ट्र की कुछ उल्लेखनीय हानि नहीं होगी।

'कल्पित उच्च-नीचता एवं प्रकट गुणों के न होने पर भी केवल जन्म के आधार से प्राप्त होने वाले विशिष्टाधिकारों को छीन लेने के उपरान्त जो शेष जातिभेद होगा वह उस सर्प के समान होगा जिसके विषैले दाँत निकाल लिये हों, और इसीलिये, वह यदि और कुछ समय तक बिलबिलाते भी रहे तो कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं!'

इस प्रकार के जाति के जो गुट होंगे वे वर्तमान कुल के समान ही निरुपद्रवी होंगे। आवश्यक गुणों के न होने पर केवल जाति का ब्राह्मण है, इस आधार पर समाज में उसे कोई भी विशिष्ट अधिकार प्राप्त होना यदि बन्द हो जाये या योग्यता होने पर केवल जाति से भंगी होने के कारण विशिष्ट अधिकारों से वंचित रहने की स्थिति यदि न रहे तो फिर भले ही कोई संघ स्वतः को ब्राह्मण, मरहठा, वैश्य या बसोड़ कहलाये तो केवल इस सम्बोधन मात्र से आपस में ईर्षा या द्वेष करने का कोई भी सबल एवं न्यायपूर्ण कारण नहीं रहेगा। आज जिस प्रकार किसी कुल का नाम चतुर्वेदी होता है तो किसी अन्य कुल का नाम द्विवेदी, पर केवल इस नाम के आधार पर उनमें विवाद नहीं होता। परन्तु यदि चतुर्वेदी कुल के व्यक्ति को उसमें गुण की श्रेष्ठता है या नहीं यह देखे बिना ही केवल वह चतुर्वेदी है इसी आधार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्रपूजा का सम्मान या वैद्यभूषण पदवी का ताम्रपट देना ही चाहिये और द्विवेदी कुल का व्यक्ति जो भले ही चतुर्वेदी से कितना भी सज्जन या वैद्यकविशेषज्ञ क्यों न हो, फिर भी उसे वे अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते हैं, इस प्रकार की व्यवस्था यदि निश्चित की जाये तो चतुर्वेदी एवं द्विवेदी कुलों में ईर्ष्या तथा द्वेष उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का नाम एवं कुल का उपनाम भिन्न होने पर भी केवल नामभिन्नता से उनमें विषमता एवं द्वेष उभरकर इसलिये नहीं आता कि जन्म के आधार पर कोई भी विशिष्ट अधिकार या विशिष्ट हानि उससे जोड़ी नहीं जाती, उसी प्रकार की अवस्था जन्ममूलक पुराणपन्थी उच्च-नीचता एवं विशिष्ट अधिकार हटा देने पर इन जातियों के गुटों की भी होगी। अतः जन्मजात जातिभेद के उच्छेदन का अर्थ है परस्पर जातियों की कल्पित उच्च-नीचता की भावना का तथा उसके अनुषंग से प्राप्त होने वाले विशिष्ट अधिकारों का उच्छेद करना। प्रत्येक व्यक्ति को यह भावना रखनी होगी कि यदि किसी जाति में या व्यक्ति में कोई गुण प्रकट होगा तो केवल वह जाति या व्यक्ति केवल उक्त गुण के प्रमाण में ही योग्य मानी जाकर उसके अनुषंग से प्राप्त होने वाले अधिकारों के लिये पात्र होगा। मोटरकार का चालक वह होगा जो कार चलाने में कुशल होगा। उसका बाप, दादा, परदादा कार चलाने में प्रवीण भले ही हो परन्तु केवल इस आधार पर कार चलाने के गुण आनुवंशिक-रूप से उसमें होने ही चाहिये ऐसा मानकर, यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति उसकी कार में बैठे तो उस पर मरने की ही नौबत आयेगी। कार चलाने का प्रमाण-पत्र तुझे प्राप्त हुआ है क्या? यह प्रमुख प्रश्न है। यदि उसमें वह गुण आनुवंशिक रूप से हो तो वह प्रकट होना चाहिए, वह तो सुप्त है इसलिये उसे वह प्रमाण-पत्र प्राप्त नहीं होना चाहिये। कारचालक के अधिकार का उपयोग उसे करने नहीं देना चाहिये। वही अवस्था राष्ट्रीय प्रगति की कार की है। इस कार्य में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट गुणों में जो प्रवीण सिद्ध होगा वह धुरीण होगा, फिर वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति से ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, भंगी हो। जो व्यक्ति कपड़े बढ़िया सींता है वह दर्जी है, फिर वह तथाकथिक दर्जी जाति का हो या बनिया या कुरमी हो।

प्रस्तुत जातिभेदों में कौनसे अत्यन्त घातक घटक का हमें उच्छेद करनां चाहिये, इस बात का उपर्युक्त स्पष्ट निश्चय करने के पश्चात्, हिन्दू राष्ट्र के संगठन में बाधक बनने वाली उन दुष्ट रूढ़ियों को जो जातिभेदों के उक्त घातक घटकों में अन्तर्भूत होती हैं या जो उनके परिणामस्वरूप होती हैं, वे कौनसी हैं और उनका सर्वनाश कैसे किया जाये इस विचार का दिग्दर्शन करेंगे।

जातिभेद तो मानो एक चतुष्पाद पशु है, जिन चार पैरों पर वह प्रमुख रूप से खड़ा है वे उसके चारों पैर यदि तोड़ दिये जायँ तो समझ लो कि उसकी वह भारी-भरकम देह तत्क्षण ही गिर पड़ेगी। हिन्दू-राष्ट्र के प्रबल संगठन के लिए अत्यन्त हानिकर होने वाला जातिभेद का प्रमुख भाग है उसकी चार रूढ़ियाँ। उसमें से—

व्यवसाय-बन्धन

यह तो प्रायः टूट ही चुकी है। चार वंशों की या जातियों की चार हजार जातियाँ जो बनीं और फिर उनसे अनेक उपजातियाँ जो बनती चली गईं, वे सब इस व्यवसाय-बन्धन की बला के कारण ही बनीं। खड़े रहकर बुनने वालों की एक जाति, तो बैठकर बुनने वालों की दूसरी जाति? दूध-दही-मक्खन का धन्धा करने वालों की अलग से ग्वाला जाति। पर उसमें भी जो पक्के दूध से मक्खन निकालते हैं, उनकी जाति पुनः भिन्न? यह अनर्थकारी परम्परा भविष्य में और चलते रहने का अब विशेष भय नहीं रहा है। किसी भी व्यक्ति के कोई भी धन्धा करने में जाति का बन्धन अब साधारणतः आता ही नहीं—जाति से दर्जी-धन्धा कसेरे का—जाति से ब्राह्मण-धन्धा लोहे के कारखाने का—जाति से बनिया-धन्धा शिक्षक का वह स्पष्ट स्थिति सब दूर दिखाई देती है। जिस व्यक्ति में जिस कार्य को करने की योग्यता हो उसे वह कार्य करने की स्वतन्त्रता मिल चुकी है। आज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल के अभिभाषक (वकील), मोटरकारचालक, भैषजक (डाक्टर), रेलवाले, तारवाले आदि नये धन्धे अपनाने में जिस प्रकार जाति बाधक नहीं बनती, वैसे ही पहले स्मृतिकथन या रूढ़ि के कारण जिन धन्धों को करने में जाति का बन्धन आता था, उन धन्धों को करने में वह बन्धन अब किंचित्‌मात्र भी नहीं आता। बसोड़-ढेढ़ सिपाही हो जाते हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय ग्वाला बन जाते हैं, इतना ही नहीं तो, दुकानों में विलायती बूट-चप्पलें-जूते भी प्रकट रूप में बेचते है और फिर भी उनकी जाति नष्ट नहीं होती।

किसी एक जाति के लिये कोई विशिष्ट व्यवसाय बन्धित कर देने की हमारे पुरातन जातिभेद की जो नीति थी, वह अपने पक्ष की न्यायपूर्णता को सिद्ध करने लिये सदा ही दो लाभों को प्रस्तुत करती है, पहला यह कि पीढ़ी दर पीढ़ी आनुवंशिक (हेरिडिटरी) बल के कारण प्रत्येक अगले व्यक्ति में उस विशिष्ट व्यवसाय या कला के अनुरूप प्रवृत्ति एवं प्रवीणता बहुत प्रमाण में प्रकर्षित होती है और दूसरा यह कि पैतृक रूप से पण्डिताई का या चर्मकारी का, जो कोई भी व्यवसाय उस घर में चलता आया हो उसका प्रशिक्षण, उसकी पूंजी, उसकी खूबियाँ बाल्यकाल से ही उस होनहार पीढ़ी को बड़ी सहजता से ही प्राप्त हो सकती हैं। परन्तु हमारी नूतन गुणाधिष्ठित पद्धति में भी उक्त दो लाभों से वंचित रहने का किसी को भी कोई कारण नहीं। पुरातन जातिबन्धित व्यवसाय-पद्धति यदि समाप्त हो भी जाय तो भी व्यवसाय-स्वतन्त्रता की हमारी नवीन पद्धति में भी पैतृक व्यवसाय ही नहीं इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध न होने के कारण—उपर्युक्त दोनों लाभ जिस प्रमाण में वास्तव में प्राप्त हो सकते हैं उस प्रमाण में प्राप्त होने में कोई भी प्रत्यवाय नहीं होगा! उत्कृष्ट 'संगीतरत्न' गायक का पुत्र यदि स्वाभाविक रूप से ही गायक हो तो बड़े आनन्द से वह गायक का व्यवसाय करे—उस गुण में यदि वह प्रवीण हो तो उसे भी 'संगीतरत्न' की उपाधि मिलेगी ही। पर यदि पिछली सात पीढ़ियों से कुल में गायकी होकर भी यदि किसी लड़के की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज़ ऐसी हो जैसी कोई मटकी फूटी हो, अतएव गानकला की अपेक्षा ढोर चराने के लायक ही हो, तो भी उसे 'संगीतरत्न' यह पैतृक उपाधि एवं राजसभा के गायक का पैतृक स्थान देने की भयंकर भूल इस नवीन गुणाधिष्ठित व्यवसायपद्धति में नहीं होती। पुत्र में पिता के गुण सुप्त रूप में तो होते ही हैं, इस कथन का व्यवहार में कोई भी उपयोग नहीं है। व्यवहार में तो प्रकट गुण ही उपयोगी होते हैं। अभिभाषक के पुत्र में अभिभाषकत्व के आनुवंशिक सुप्त गुण हों या न हों—केवल इसी आधार पर न्यायालय में कोई अभिभाषक नहीं मानेगा। उसे तो अभिभाषक बनने हेतु विधिस्नातकत्व की परीक्षा में सफल होना चाहिये, वे गुण उसमें प्रकट रूप में दिखाई देने चाहिये। जिसमें वे अभिभाषकत्व के गुण प्रकट रूप में दिखाई देंगे, विधिस्नातकत्व की परीक्षा में जो उत्तीर्ण होगा, वही अभिभाषक होगा—फिर उसमें वे गुण आनुवंशिक हों या स्वोपार्जित हों—उसके पिता, दादा, अभिभाषक हों या धाँगड़ हों। जातिबद्ध व्यवसायबन्धन को तोड़ने से उसमें निहित उपर्युक्त दोनों लाभों से वंचित न रहते हुए कोई भी अपने उस जातिबद्ध व्यवसाय से उच्चतम व्यवसाय कर सके ऐसी उसे स्वतन्त्रता रहती है। व्यवसाय तथा उससे उपन्न होने वाले सम्मान का अधिकार गुण पर ही अवलम्बित होने से व्यवसायों एवं कलाओं का भी उत्कर्ष होता है, क्योंकि उन व्यवसायों एवं कलाओं के योग्य लोग ही उनमें होते हैं तथा जो प्रतियोगिता में टिक पाते हैं वे ही धन-सम्मान के धनी होते हैं। योग्य व्यक्ति के द्वारा योग्य कार्य होने की सम्भावना इस व्यवसाय-स्वतन्त्रता में अधिक होने से राष्ट्र की सम्पूर्ण क्षमता वृद्धिगत होती है, सैनिकगुण विद्यमान न होने की अवस्था में किसी राठौर के कुल में हिन्दूपदपादशाही का सेनापतित्व पीढ़ियों तक सड़ते नहीं रहता, निरक्षर भट्टाचार्यों को अग्रपूजा का पैतृक अधिकार प्राप्त नहीं होता।

पर, क्या होगा कुछ समझ में नहीं आता !

जातिनिष्ठ व्यवसाय-बन्धन की परम्परा का खण्डन कर गुण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्ठ व्यवसाय-स्वतन्त्रता की परम्परा का यदि मुक्त रूप से प्रचलन किया जाये, तो समाज पर कोई भयंकर संकट तो नहीं आएगा, चहुँओर अराजकता का साम्राज्य तो नहीं होगा, सर्वत्र पाप-ही-पाप होकर ईश्वर का कोप तो नहीं होगा ? क्या होगा कुछ समझ में नहीं आता ? ऐसा भय रखने की भी अब कोई आवश्यकता नहीं। मनुस्मृति में किया हुआ व्यवसायों का जातिनिष्ठ वर्गीकरण एवं वर्तमान में प्रत्यक्ष व्यवहार में उस वर्गीकरण की जो मिलावट हुई है, वह इन दोनों के यदि सम्मुख रखा जाये तो व्यवसाय-बन्धन ही जिन जाति-उपजातिभेदों का प्रमुख रहस्य रहा है उन दर्जी, सुनार, लुहार, ग्वाला, बनिया, पुरोहित, बैरागी, जुलाहा आदि जातियों की जाति जो वास्तव में नष्ट हो चुकी है, उसका आज किसी को स्मरण तक नहीं है, यह वास्तविकता समझ में आ जाएगी। आज जब इन समस्त जातियों के मूल व्यवसाय कोई भी कर रहा है तथा वे जातियाँ अपने दर्जी, सुनार आदि नाम तथा जातिसंघ यथावत् रखकर, स्वयं उन व्यवसायों को न करते हुए अन्य किन्हीं भी व्यवसायों को कर रहे हैं तब उन जातियों के सनातनी लोग भी मनःपूर्वक यह चुगली करते हैं कि जातिभेद अभी तो जीवित ही है, परन्तु ये सुधारवादी लोग ही उसे नये सिरे से तोड़ना चाहते हैं ? व्यवसाय-बन्धन एवं जातिक्रम के बिछुड़न से लाग इस प्रकार पूर्णतः अभ्यस्त हो चुके हैं। मनुस्मृति के रचनाकाल में मुद्रण-कला का अस्तित्व ही न होने से, ब्राह्मण यह व्यवसाय करे ऐसा उसमें लिखा नहीं गया है। तथापि मनुमहाराज को त्रिकालज्ञ तथा उनकी स्मृति त्रिकालाबाधित एवं अपरिवर्तनीय कहने वाले सनातनी ब्राह्मण पत्रकार भी, मुद्रणालय का व्यवसाय उत्तम रीति से चला रहे हैं जबकि ब्राह्मण मुद्रणालयों को चलाये ऐसा मनु भगवान ने कहीं भी लिखा नहीं है और फिर भी स्वयं को विशुद्ध ब्राह्मण मानकर जातिभेद ही वर्तमान हिन्दूराष्ट्र का आधार है, उसे कभी भी नष्ट नहीं करना चाहिए, मनुस्मृति के निबंध के अनुसार धर्म सदा अपरिवर्तनीय ही रहना चाहिए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव इस मनुस्मृति को हम 'चातुर्वर्ण्य' नामक मुद्रणालय में मुद्रित कर रहे हैं, ऐसा डट के घोषित करते हैं। व्यवसाय-बन्धन के टूट जाने से मौलिक जातिभेद तो मूलतः ही आधे से अधिक प्रमाण में मर चुका है। गुणनिष्ठ व्यवसाय-स्वतन्त्रता आज इतनी रूढ़ हो बैठी है कि उस प्राथमिक जातिभेद का आधार ही ढह चुका है, इस बात की किसी को कल्पना तक नहीं है। अतः व्यवसाय-बन्धन के टूटने से क्या बीतेगी यह कहा नहीं जा सकता, ऐसा भय रखने का अब कोई कारण नहीं है, क्योंकि, उसके टूटने से समाज का जो कुछ हो सकता है वह आज इस प्रकार हो ही चुका है। इतना ही नहीं, तो वह हम आप सब लोगों को पुराता भी है...क्योंकि, उस व्यवसाय-बन्धन की वेड़ी को आप भी पग-पग पर प्रकट एवं निःसंकोच रूप से तोड़ते हैं और आपके उक्त कार्य से जातिधर्म का कुछ उल्लघन होता है, ऐसी शंका भी आपके मन में नहीं आती।

समूचा संसार विशेषतः यूरुप, अमरीका को देखिये !

गुणनिष्ठ व्यवसाय-स्वतन्त्रता की प्रथा के सुपरिणामों को यदि देखना चाहते हो तो एक बार वर्तमान यूरुप-अमरीका की ओर दृष्टि-क्षेप कीजिये, फिर जातिनिष्ठ व्यवसाय-बन्धन को तोड़ने पर क्या होगा समझ में नहीं आता। ऐसी भयावनी शंका लुप्त होकर उससे राष्ट्रीय बल, उद्यम, सम्पत्ति, पुरुषार्थ, कला, क्षमता आदि समस्त दृष्टियों से यदि हुई तो राष्ट्र की समृद्धि ही होगी, ऐसा दृढ़ विश्वास हो जाता है। केवल हिन्दुस्थान में ही जातिनिष्ठ व्यवसायबन्धन प्रभावशील है, जापान, चीन, तुर्किस्तान, समूचा यूरुप, समूचा अमरीका इन क्षेत्रों में उक्त प्रथा का कोई नाम तक नहीं लेता। 'हिन्दुस्थान के अतिरिक्त यह समूचा संसार गुणनिष्ठ व्यवसायस्वतन्त्रता का अनुयायी होकर भी, उस जात-पांत के विना उसका कोई भी काम, कहीं भी नहीं रुकता, इतना ही नहीं तो गुणनिष्ठ व्यवसाय-स्वतन्त्रता के कारण कम-से-कम यूरुप-अमरीका तो, व्यवसाय कुशलता के क्षेत्र में गत एक सौ वर्षों की अवधि में हमसे पाँच हजार वर्ष से आगे बढ़ चुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं।' गुणनिष्ठ निर्वाचन से संगठित हुआ उनका सैन्यबल हमारे नामधारी 'क्षत्रिय' छाप जातिनिष्ठ राजाओं में हजारों गुना अधिक जुझार है...गुणनिष्ठ निर्वाचन से संगठित उनका बुद्धिबल परसों वाष्पयुग में, तो कल विद्युत्युग, और आज रेडियम के युग की अतिदर्शन अतिश्रवणों की सिद्धियाँ सम्पादित कर स्वप्न में भी कभी हमने जिन आश्चर्यों को न सोचा था उन आश्चर्यों को वे दूरध्वनि, (टेलिफोन), वे दूरदर्शक (टेलिविजन), वे ध्वनिक्षेप (ब्राडकास्ट), वे ध्वनिलेख (फोनोग्राफ्स), वे तार (टेलीग्राम), वे बेतार (वायरलैस) वे मशीनगनें, वे पनडुब्बियाँ, वे वायुयान—आदि को वर्तमान में, सत्यसृष्टि के मानो खिलौने ही बना छोड़ा है? शिल्प, वाणिज्य, कृषि, कलाकौशल आदि सभी व्यवसाय इधर की अपेक्षा उधर ही सैंकड़ों गुना प्रकर्शित हुए हैं। 'अर्थात् जातिबद्ध व्यवसायबन्धन को तोड़ने से ब्राह्मण, राजन्य, वाणिज्य आदि गुणों में, शक्तियों में एवं व्यवसायों में राष्ट्र का अपकर्ष नहीं होता, प्रत्युत गुणनिष्ठ व्यवसाय-स्वतन्त्रता से ही वह समृद्ध हो सकता है, यह अब प्रयोगसिद्ध हो चुका है।'

भट्ट तथा भंगी !

जन्मजात जातिभेद के उच्छेदन हेतु अत्यन्त आवश्यक होने वाले इस व्यवसाय-बन्धन के उच्चाटन का काम इस प्रकार अब अधिकांश में हो चुका होने से तथा किसी के द्वारा किसी भी व्यवसाय के करने के मार्ग में उसकी जाति के बाधक न होने के कारण, उस विषय में जातिभेद हमारा कोई विशेष विवाद शेष नहीं है। अब भी यदि व्यवसाय-बन्धन कहीं बाधक बनता है, तो वह है केवल अस्पृश्यों के विषय में। परन्तु स्पर्शबन्धन के विपय में उस पर विचार होगा ही, अतः, यहाँ उसका केवल उल्लेख करना ही पर्याप्त है। अछूतों में भी अब चमार-बसोड़ आदियों के परम्परागत व्यवसायों में विशेष बन्धन नहीं रहे हैं। दूसरी जातियों के लोग भी कुछ प्रमाण में जूते-बूट बेचने की दुकानों को चलाना तथा आधुनिक पद्धति पर चमड़े के बड़े कारखाने चलाना आदि चमारों के व्यवसाय तो करते ही हैं, वैसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमार, बसोड़ भी अपने गुण के अनुरूप विद्यालयों में शिक्षक भी हो सकते हैं। व्यवसाय-बन्धन यदि कड़े रूप में कहीं विद्यमान हैं तो वह है इधर अस्पृश्यों में भंगी के व्यवसाय में तथा उधर स्पृश्यों में भट्टों के व्यवसाय में ! भंगी का काम अन्य जातियों में से कोई भी करना नहीं चाहता, तथा भट्टों का काम अन्य जातियों के किसी भी व्यक्ति को करने नहीं दिया जाता। इसलिए इन दो व्यवसायों का भर 'एकाधिकार' (मोनोपोली) ही मानो उन दो जातियों को मिला है। दूसरा कोई भी व्यक्ति अपना काम नहीं करता यह विश्वास होने के कारण यह भंगी कलकत्ता के समान प्रचण्ड, विशाल नगर निगम (म्युनिसिपल कार्पोरेशन) को भी झुका सकता है, तो फिर छोटे-मोटे परिवारों की क्या बात ? नगर संस्था का अध्यक्ष यदि हड़ताल करे तो उसे असफल किया जा सकता है...उस पद के लिए तो दस आवेदन त्वरित ही आ सकते हैं, आवेंगे...पर भंगी यदि कहीं हड़ताल कर दें, तो उनकी माँगें मान्य करने के अतिरिक्त अन्य कोई भी साधन उपलब्ध होना कठिन हो जाता है। क्योंकि, अन्य कोई भी उसका काम करेगा ही नहीं। वही वात भट्ट के सम्बन्ध में भी है। भट्ट यदि उस विशिष्ट जाति का, वृत्ति का न हो तो यथावश्यक धर्म-संस्कार हुआ ही नहीं है ऐसी बेचैनी उस भट्ट की अपेक्षा जजमान को ही अधिक होती है। व्यवसाय-बन्धन को तोड़ना यदि कहीं शेष हो तो वह है केवल उक्त दोनों के सम्बन्ध में ही।

उनमें से भंगी को इस प्रकार ठीक करना चाहिए

भंगी का काम कोई भी नहीं करेगा यह धारणा ही भंगी जाति को उस व्यवसाय का 'एकाधिकार' (मोनोपोली) अपने हाथ में रखने योग्य बनाती है, उसके लिए किसी का भी कोई निबंध (कानून) नहीं है। इसलिए, जातिभेद को तोड़ने की इच्छा रखने वालों को चाहिये, कि अपने सिद्धान्त हेतु वे कुछ समय के लिये भंगी का काम कर दिखायें। पहले सेनापति बापट, फिर महात्मा गांधी, अप्पाराव, पटवर्धन आदि कुछ प्रमुख नेताओं ने यह परिपाटी प्रारम्भ कर ही दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; पूर्व में एक बार कलकत्ते में भंगियों की प्रचण्ड हड़ताल होने से जब समूचा नगर गन्दगी के कारण हतबुद्ध हुआ था तब सैकड़ों भद्र युवकों ने (सभ्य घरानों के युवकों ने) अपने-अपने गली-कूचे में तथा विभागों में भंगी का काम प्रारम्भ किया और उसके परिणामस्वरूप हड़ताल टूट गई। केवल सिद्धान्त के लिये क्यों न हो पर 'उच्च' माने जाने वाले जातियों के लोग जब इस व्यवसाय को स्वतः ही करते हैं तब भंगियों जैसी ही अन्य 'अस्पृश्य' जातियाँ भी उसे करने के लिये आगे आती हैं, यह अब तक का अनुभव है। क्योंकि, पूर्वास्पृश्यों के हाथ में होने वाले व्यवसायों में, भगी का व्यवसाय ही कम-से-कम आज तो समृद्धि का व्यवसाय है। परिवार की स्त्रियाँ, पुरुष इतना ही नहीं तो बच्चों के नाम भी नौकरों की सूची में लिखवाकर, भंगी का एक परिवार प्रतिमास पचास-साठ रुपये अर्जित करता है। ऐसी अवस्था में कुछ सुशिक्षित युवक यदि इस व्यवसाय को जान-बूझकर अपना लें, तो तहसीलदार-कचहरी के लिपिक (क्लर्क) से, विद्यालय शिक्षकों की प्राथमिक नौकरी से, दुगुना वेतन सहज ही मिल सकता है।

एक ओर से भंगियों का काम प्रत्यक्ष रूप से करने वाले प्रचारक आगे आयें तथा दूसरी ओर उन अन्य सुधारकों को, जो उतना अधिक काम कर नहीं सकते हैं, चाहिये कि भंगी का काम करने वालों से उसी प्रकार समानता से व्यवहार करें जिस प्रकार वे अन्य मनुष्यों से करते हैं। प्रत्यक्ष आचरण में स्वतः ही इस प्रकार का व्यवहार करने वाले पाँच-पचास सुधारवादियों का गुट यदि निर्भयता से काम करने लग जाये, तो भंगियों को अत्यन्त नीच मानने वाली हजार वर्ष पुरानी समाज की धार्मिक भावना भी कितनी शीघ्रता से परिवर्तित हो सकती है, इसका आश्चर्यकारक प्रत्यन्तर उदाहरण यदि आवश्यक हो तो रत्नागिरी के गत चार वर्ष के इतिहास में दिखाई देते हैं। भंगियों के बालक विद्यालयों में अन्य जातीय बालकों के साथ अभिन्नता से बैठते हैं, भंगी लोग प्रतिदिन अपना भंगी कार्य—सफाई-कार्य पूर्ण करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरान्त अपराह्न या सन्ध्या समय में हिन्दू-उपहार-गृहों में ब्राह्मण, बनिया, मरहठा आदि विभिन्न जातियों के नागरिकों के साथ चाय-समोसे का उपहार करते हुए, हंसते-खेलते हुए अभिन्नता से बैठे हुए दिखाई देते हैं। भंगी कीर्तनकार हज़ारों लोगों के सम्मुख मन्दिर के सभा-मण्डप में कीर्तन करते हैं, उन भंगी कीर्तनकारों को ब्राह्मण आदि महिलाएँ हार-फूल अर्पण करती हैं तथा सैंकड़ों ब्राह्मणादि नागरिक कीर्तन परम्परा का अनुसरण कर कीर्तनकार को दण्डवत् कर उसकी परिक्रमा करते हैं। जो भंगिन दस बजे मैले के डिब्बे लेकर घर से निकलती है, वही ग्यारह बजे नहा-धोकर अच्छे कपड़े पहनकर नगर भोजन के समारोह में भोजन हेतु मन्दिर में आती है और सैंकड़ों प्रतिष्ठित त्रैवर्णिक महिलायें उसके साथ अभिन्नता से भोजन करती हैं। ऐसे प्रसंग कई बार आते हैं। जिस रत्नागिरी में सात वर्ष पूर्व भंगी महिलाओं को सौभाग्यकुंकुम लगाने के लिये केवल पाँच त्रैवर्णिक कन्याएँ बड़ी ही कठिनाई से प्राप्त हुई थीं, वहाँ मेलों एवं समारोहों के अवसरों पर मन्दिर-मन्दिर में हज़ारों महिलाओं के समूह में भंगी जाति की महिलाएँ अभिन्नता से विचरती हैं, अन्य महिलाओं के भाल पर सौभाग्यकुंकुम लगाती हैं, लगवा लेती हैं, सभाओं में निर्विशेष समानता से एकत्र बैठती हैं। वही अब वहाँ पर रूढ़ि बन रही है।

अतः समाज के लिये अत्यन्त हितकारी एवं अपरिहार्य इस प्रकार का यह भंगी का कार्य नीचता का द्योतक नहीं है; उस व्यवसाय को करने वाला व्यक्ति अन्य व्यावसायिकों के समान ही स्वच्छ एवं शुद्ध हो तो समता से संव्यवहार्य होता है ऐसा प्रत्येक सुधारवादी को अपने व्यवहार से नित्यप्रति सिद्ध करना चाहिये, जिससे अन्य जातियाँ उस व्यवसाय को भी करेंगी और फिर व्यवसाय-बन्धन की जाति-समस्या जो केवल दो व्यवसायों में ही शेष है, वह भंगी के सम्बन्ध में तो टूट जाएगी, फिर बचा रहा केवल भट्ट। पर यदि भट्टों को ठीक करना हो तो पहले यजमान को ठीक करना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि, वर्तमान स्थिति में यदि किसी को ऐसा लगता हो कि यह भट्ट समाज के सर पर चढ़ा है, तो उसे यह ध्यान में रखना चाहिये कि वह उसकी स्वतः की धूर्तता की सीढ़ी लगाकर हमारे सर पर नहीं चढ़ा है, तो हम ही हमारे भोलेपन की सीढ़ी उसे देकर, उसे हमारे सर पर चढ़वा रहे हैं। वास्तव में देखा जाये तो भट्ट यह एक निरुपद्रवी जीव है। जब तक पुलिस की सहायता लेकर बलपूर्वक वह हमारे घर में नहीं घुसता तथा जब तक हम ही उसको निमन्त्रण पर निमन्त्रण देकर उसकी चरणरज हमारे घरों में उड़ने तक सन्तुष्ट नहीं होते तब तक दोष भट्ट का न होकर हम यजमानों का ही है। भट्टों के नाम से कोसा-काटी करने वाले अनेक 'समाजिस्ट' एवं सुधारवादी' विवाह, यज्ञोपवीत संस्कार, श्राद्ध, महालयश्राद्ध, गनगौर-गणेश-चौथ का दिन उगते ही, भट्ट-पुरोहितों के यहाँ चक्कर काटते हैं, उनके न आने पर झल्लाते हैं, दो बजे तक भूखे रहते हैं पर जब तक भट्टजी पूजा नहीं कराते तब तक वे भोजन का जो कौर मानो निगल ही नहीं पाते, ऐसे उस अज्ञानी भोलेपन में ही भट्टशाही का बल निहित है, भट्टों के कुशों में नहीं। जब तक यजमान इस अज्ञानी भोलेपन का त्याग नहीं करेगा, तब तक भले ही आप उस भट्टशाही को लाखों शाप देते रहें फिर भी वह भट्ट इसी प्रकार सर पर चढ़ा रहेगा। जब तक यजमान ठीक नहीं होते, तब तक भट्टों को ठीक नहीं किया जा सकता। यदि इन वर्तमान भट्टों को बदल दें, तो कल नये भट्ट सर पर चढ़ेंगे।

क्योंकि, भट्ट कहते ही जो भी सर्वप्रथम ब्राह्मण भट्ट ही दृष्टि के सम्मुख आता है तो भी देवल, जंगम, गुरु इतना ही नहीं तो ढेढ़ों में भी ढेढ़ भट्ट है ही। ये सब अब्राह्मण हैं पर भट्ट तो हैं ही। भट्ट का पुत्र भट्ट ही होता है, फिर उसमें वे गुण हों या न हों। उसकी तो वह आनुवंशिक जागीर ही मानो होती है। उसके अतिरिक्त अन्य किसी भी जाति को या कुल को या व्यक्ति को वे संस्कार करने का अधिकार ही नहीं होता। ऐसी अवस्था आज जहाँ-जहाँ भी है वहाँ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ उस-उस भोले समाज की वह पुराती है, उसे वह चाहता है—इसीलिये वह जीवित है।

अतएव भट्ट का जातीय व्यवसायबन्धन तोड़ने का प्रमुख उपाय यो यह है कि संगठन के अभिमानी सुधारवादी लोग पहले इस भोलेपन को त्याग दें कि विशिष्ट जाति के या कुल के भट्ट के बिना अपने संस्कार हो ही नहीं सकते और इस प्रकार इस सुधार को प्रत्यक्ष अपने व्यवहार में लायें। पहली बात तो यह है कि कई संस्कारों के लिये पुरोहित बुलाया ही न जाए। पूजा, पाठ, गनगौर, गणेशचौथ, अशौच-सूतक, संक्रान्ति, द्वादशी, दशहरा, दीवाली आदि सैकड़ों अवसरों पर यदि भट्ट न भी हो तो भी कुछ काम नहीं रुकता। स्वतः ही पोथी बाँचना चाहिये या शुद्ध हिन्दी में वे शब्द या भाव व्यक्त कर स्वयं ही पूजा करनी चाहिये। व्रत-समाप्ति पर किसी उपयुक्त संस्था को दक्षिणा देनी चाहिये। श्राद्ध-महालयश्राद्ध के अवसरों पर पितरों का गुणसंकीर्तन कर हिन्दूराष्ट्र को बलशाली बनाने वाले कार्यों में उनके नाम पर उनके स्मरणार्थ दान देना चाहिये या उस दिन को राष्ट्र सेवा में, पितृभू सेवा में अर्थात् पितृसेवा में ही अर्पित कर कोई भी राष्ट्रकार्य करना चाहिये। पिपृभू के—पितृराष्ट्र के हेतु प्राणपण से चेष्टा करने की तथा जूझने की अपेक्षा पितृ-ऋण चुकाने का और अधिक हितकर साधन-भर कौनसा हो सकता है? विवाहों को नैर्बंधिक-पंजीयन (लीगल रजिस्ट्रेशन) पद्धति से करें। पहले भट्ट का अंगूठा चूमकर उसे बुलाते ही क्यों हो और फिर उसके नाम से रोते क्यों हो? भट्ट को 'शाह' कहना बन्द करो, तो भट्टशाही समाप्त हो जाएगी।

यदि वह सम्भव ही न हो और उपाध्याय वर्ग आवश्यक ही हो तो हमारे आर्यसमाजी बन्धु आज कई वर्षों से धर्मोपाध्यायवर्ग का जिस पद्धति से निर्माण कर रहे हैं उसी पद्धति का अवलम्बन करना चाहिये। श्रुतिस्मृतियज्ञ प्रक्रिया की जिस परीक्षा में परीक्षार्थी उत्तीर्ण होगा, उससे सम्बन्धित पदवी का ही नहीं तो याज्ञिकी चलाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अधिकार भी अधिकृत प्रमाणपत्र देकर उसे अर्पित करना चाहिये। फिर वह व्यक्ति किसी भी जाति का या कुल का क्यों न हो ? जिस प्रकार आज डाक्टर बनना जातिपाँति पर अवलम्बित न होकर, जो भी डाक्टरी का ज्ञान अर्जित कर लेने का प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेता है वह डाक्टर बन जाता है; वैसे ही अब भविष्य में वैदिक, याज्ञिक, उपाध्याय, भट्ट, भिक्षुक का भी होना चाहिए। श्रीमान् स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज द्वारा स्थापित गुरुकुलों में होने वाले अस्पृश्य जाति के ब्रह्मचारी विद्यार्थी आज वेदालंकार, तर्क-तीर्थ, विद्यानिधि, याज्ञिक, उपाध्याय हो रहे हैं; उन्हें ब्राह्मण तर्क तीर्थों का, विद्यानिधियों का याज्ञिकों का भट्टों का, सम्मान प्राप्त होना चाहिये, उपाध्याय का व्यवसाय करने की मुक्तता होनी चाहिये। अतः प्रत्येक सुधारवादी को चाहिये कि यदि भट्ट आवश्यक ही हो तो वह उसका चयन जातीयता के आधार पर न करते हुए गुण के आधार पर करें, अर्थात् जिस प्रकार आज बढ़ईगीरी या वैद्यकी के द्वार समस्त जातियों के लिये मुक्त हैं, उसी प्रकार याज्ञिकी या भट्ट को भी जातिनिष्ठ न रहने देते हुए गुणनिष्ठ ही रखना चाहिये।

वास्तविकता तो यह है कि जिन दो व्यवसायों में आज भी व्यवसाय-बन्धन जातिबद्ध हैं, उनमें भंगी का व्यवसाय-बन्धन तोड़ना तो थोड़ा कठिन हो सकता है; पर बेचारे भट्ट का व्यवसाय-बन्धन तोड़ना तो कठिन नहीं हो सकता, क्योंकि, यदि भट्ट को निमन्त्रित ही न करें तो चल सकता है, साथ ही भंगी के न आने पर जितना काम अटकता है उतना भी भट्ट के न आने पर नहीं अटकेगा। वर्तमान समाज-भावना के अनुसार स्वयं भंगी होना एक बार अपमानजनक हो सकता है; पर यदि स्वतः ही स्वतः का पुरोहित बन जाये तो वह सर्वथा सम्मानजनक ही माना जाएगा। हमारी हिन्दी तो निश्चित रूप से भगवान को समझ में आती ही होगी; अतः प्रत्येक सुधारवादी को चाहिये कि वह अपने समस्त धार्मिक संस्कार, पूजा-पाठ, व्रत आदि स्वतः ही हिन्दी में करें या संस्कृतज्ञ बी० ए०, एम०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए०, हो ऐसे किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, बसोड़, चमार आदि विद्वान सदाचारी हिन्दू-सेवक मित्र से करवायें या आर्य समाजी पद्धति के अनुसार गुणनिष्ठ तथा जातिनिर्विशेष पद्धति के पुरोहित-विद्यालयों से योग्यता का प्रमाण-पत्र प्राप्त नये उपाध्यायों से कर-वाएँ।

व्यवसाय-बन्धन तोड़ने के लिये सुधारवादियों को इस प्रकार अत्यल्प कार्य ही करना शेष है। केवल लम्बी-लम्बी बातें करना छोड़ कर जो व्यक्ति, अन्य लोग इस सुधार को व्यवहार में लायें या न लायें; 'मैं स्वत: तो मेरे पुरता इस सुधार को सदा ही प्रत्यक्ष रूप से आचरण में लाऊँगा' इस प्रकार का व्यवहार रखेगा वही सच्चे अर्थों में सुधारवादी होगा। अब जन्मजात जातिभेद के उच्छेदन हेतु स्पर्श-बन्धन आदि शेष विषयों के सम्बन्ध में क्या करना चाहिये, इसका विवेचन इस लेख के उत्तरार्ध में करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मजात जातिभेद नष्ट करना माने क्या करना ? (उत्तरार्ध)

लेख के पूर्वार्द्ध में प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में जिन प्रमुख विधेयों को (पाइन्ट्स को) प्रतिपादित किया गया है, उनके प्रस्तुत लेख के कुछ अंशों से निकट का सम्बन्ध होने के कारण एवं उन प्रमुख विधेयों की पुनरुक्ति, उनकी छाप, पाठकों के मन पर प्रभावी रूप से अंकित करने हेतु उपयुक्त होने के कारण तथा विषय के समुचित अनुसन्धान के हेतु भी प्रस्तुत लेख के पूर्वार्द्ध के उक्त विधेयों का प्रारम्भ में ही पुन: एक बार विवेचन करना आवश्यक है।

वर्तमान जातिभेद भले ही 'जन्मजात' कहलायें, पर वास्तव में हैं वह केवल 'पोथीनिस्ट' ? जन्मत: ही प्रकट होने वाली रूपगुण-धर्म की किसी भी भिन्नता से वर्तमान जातियों का भिन्नत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। आज की स्थिति में तो, किसी मनुष्य ने किसी विशिष्ट छाप वाले गट में जन्म लिया है अत: वह श्रेष्ठ है या स्पृश्य है तथा कनिष्ठ है या अपृश्य 'माना' जावे ऐसा पोथियों में कहा गया है, इसीलिए उसे वैसा माना जाता है। इस प्रकार वर्तमान जातिभेद जन्मजात न होकर विशुद्ध पोथीनिस्ट है।

जन्मजात होने की कोरी मान्यता वाला वर्तमान जातिभेद की उच्च-नीचता का विषैला डंक यदि तोड़ दिया जाये तो फिर वे जातियाँ या उपजातियाँ नाममात्र के लिए यदि कुछ समय तक यथावत् रहें तो भी कुछ विशेष हानि न होगी। प्रत्येक कुल का उपनाम जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ही होता है, परन्तु प्रत्यक्ष गुणबल द्वारा उपार्जित किये बिना किसी भी अधिकार का उपभोग करना उस कुल के लिए सम्भव न होने से, उन भिन्न नामों के गटों से, जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार कोई भी परस्पर ईर्षा या राष्ट्रीय विघटन आज की अवस्था में हो नहीं सकता, उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, जुलाहा, माली, बसोड़, चमार आदि विभिन्न नाम उन जाति के गटों के लिए भविष्य में भी यदि चलते रहें तथा उनकी विशिष्ट परिषदें, संघ त्यौहार तथा संस्कार भी यदि जातीय आधार पर भविष्य में चलते रहें, तो भी यदि प्रकट गुणों के अभाव में प्रत्यक्ष व्यवहार में किसी भी अधिकार का उपभोग सम्भव न हो तथा यदि यच्चयावत अधिकार एवं व्यवसाय समस्त जातियों में समानता से चलते रहें तो ऐसे घरेलू गटों द्वारा राष्ट्रीय संगठन की हानि होने की कुछ विशेष सम्भावना नहीं रहेगी। प्रत्युत, अपरिहार्य ही होने के कारण इन शेष विशिष्ट जातीय गटों का, जिनके डंक तोड़े गये हैं, राष्ट्रीय संगठन हेतु वैसा ही उपयोग किया जा सकता है जैसा तहसील, जिला, इलाका आदि भौमिक गटों का उपयोग राज्य के संगठन हेतु किया जाता है।

जाति परिषदें भी राष्ट्रीय दृष्टि से विघटक न होकर संगठक हो सकती हैं, यदि···

वे परिषदें तथा जातीय संस्थाएँ निम्नांकित प्रमुख सूत्रों को उनकी मूल उद्देश्य-पत्रिका में दो ध्रुवों के समान अटलता से अंकित करें। प्रत्येक जाति-परिषद की पहली प्रतिज्ञा, पहला सूत्र यह होना चाहिए कि, 'हम किसी भी अन्य जाति को केवल जन्माधार से जन्मतः ही हीनतर नहीं मानते या उच्चतर नहीं मानते,' और दूसरी प्रतिज्ञा यह कि हमारी जाति के लोगों में जो गुण प्रकट रूप से एवं प्रत्यक्ष रूप से प्रतीत होंगे उन्हीं के आधार पर हमारी पात्रता या अपात्रता निश्चित की जाए, हमें अधिष्ठान प्राप्त हो, अन्यों के समान ही हमारे उन गुणों का उचित सम्मान हो, अन्यों के समान ही, हमें भी उन गुणों के प्राप्त करने एवं संवर्धन करने की स्वतन्त्रता हो, 'पर प्रत्यक्ष गुणों की कसौटी से भिन्न अन्य किसी भी पक्षपाती पोथीनिष्ठ जातिनिष्ठा की अनुशंसा से अन्य कोई भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय अधिकार चालाकी से प्राप्त करने की हमारी मनीषा नहीं है' प्रत्येक जाति-संघ यदि उक्त दो स्पष्ट प्रतिज्ञाओं के आधार पर उनका जातिसंगठन करे तो वह अन्य जातियों के लिए हानिकारक नहीं होगा। इतना ही नहीं तो उक्त दो सूत्रों की कक्षा में आने वाली उन-उन जातियों की शिक्षा-स्वास्थ्य-शक्ति-सम्पन्नता-सहयोग आदि की वृद्धि हमारे अखिल हिन्दूराष्ट्र के संगठन के लिए सहायक होने की सम्भावना ही बहुत है। जिस प्रकार जन्मजात कुलों के गट होते हैं, उसी प्रकार ये जन्मजात जातियों के गट भी वर्तमान अवस्था के अनुसार हमारे हिन्दूराष्ट्र के लिए विघटक न होते हुए प्रत्युत, संगठन के हेतु सहायक ही होंगे। हमारी राष्ट्रीय महासेना की वे विभिन्न उपसेनाएँ अपनी परम्परा की छावनियों में गटों-गटों में यदि संगठित एवं सज्ज होती रहीं तो वह कुछ विशेष प्रमाण में अनिष्टकारी नहीं होगा। राष्ट्रीय-ध्वज के तले राष्ट्रीय ध्येय के हेतु ही, राष्ट्र का रणसिंघा निनादित होते ही, उन सेनाओं को तत्काल ही एकत्र कर उस महासेना की गतिविधियों को सुसंगत रूप से रखने के लिए गटों के रूप में की हुई उनकी यह पूर्वसज्जता उपयोग में आये बिना नहीं रह सकती। 'जब तक ये जातियाँ तोड़ी नहीं जा सकतीं तब तक उनकी' विभिन्न परम्पराओं की रुचि-अरुचियों के संघर्ष को तथा विरोध को न्यूनतम हानिकारक बनाने का वर्तमान परिस्थिति में जो एकमेव मार्ग है वह है केवल उपर्युक्त दो सूत्र—यही।

इस दृष्टि से यदि विचार किया जाये तो उसमें रत्नागिरी के चित्पावन (महाराष्ट्र के कोंकणस्थ ब्राह्मणों की एक उपजाति) संघ का उदाहरण कुछ प्रमाण में उल्लेखनीय है। उक्त चित्पावन संघ ने अपनी उद्देश्य-पत्रिका में उपर्युक्त दो सूत्र समन्वित किये होकर अभी-अभी उनकी जो वार्षिक साधारण सभा हुई उसमें भी उन्होंने इन सूत्रों की प्रबल पुष्टि की है। 'यह जातिसंघ हमारे हिन्दूराष्ट्र की किसी भी जाति को केवल जन्मतः उच्च या नीच नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानता। प्रत्यक्ष प्रकट होने वाले गुण-अवगुणों के आधार पर ही प्रत्येक की पात्रता निश्चित की जानी चाहिए, तथा किसी भी जाति को स्वतः में वे प्रकट गुण न होने की अवस्था में केवल जन्म की अनुशंसा से किसी भी विशिष्ट अधिकार के उपभोग की या विशिष्ट हानि के भोगने की स्थिति न हो यही इस संघ का आदर्श है—निश्चय है।' ऐसा आश्वासन उक्त संघ के अधिकांश वक्ताओं ने उस सभा में जो दिया, वह निश्चित ही स्तुत्य है। यदि वह संघ उनका यह लिखित आदर्श उतनी ही प्रामाणिकता से व्यवहार में भी लायेगा एवं वैश्य, कायस्थ, राजपूत, धींवर आदि जाति का भी यदि वही ध्येय वाक्य शिरोधार्य कर लें, तो ये जातिपरिषदें तथा ये जातिसंघ अखिल हिन्दूराष्ट्र के लिए राष्ट्रीय-विघटक होने का विशेष भय नहीं रहेगा, प्रत्युत, यदि हो सका तो हिन्दूसंगठन के महत्कार्य के लिए यह उपकारक ही हो सकता है।

जन्मजात जातिभेद के चार पैर

अतएव, वर्तमान में हिन्दूराष्ट्र के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुए इस जन्मजात जातिभेद का उच्छेद करने के लिए हमें इस माने हुए पोथीनिष्ट उच्चनीचता को अनुमोदित करने वाली एवं व्यक्ति के प्रत्यक्ष तथा प्रकट गुणों का विचार न करते हुए, उसके साथ कोई भी विशिष्ट अधिकार या विशिष्ट हानि जोडने वाली जो भी रूढ़ियाँ प्रचलित हैं उनका उच्चाटन करना होगा। ऐसी रूढ़ियों में अत्यन्त प्रबल, व्यापक एवं हिन्दूराष्ट्र क संगठन के लिए मूलतः ही घातक होनेवाली रूढ़ियाँ चार हैं। और वे हैं 'व्यवसाय-बन्धन स्पर्श-बन्धन, रोटी-बन्धन एवं बेटी-बन्धन!'

(१) व्यवसाय-बन्धन

व्यवसाय-बन्धन को तोड़ने के लिए क्या-क्या करना चाहिये इस बात का विस्तृत विवेचन लेख के पूर्वार्द्ध में किया गया है। व्यवसाय-बन्धन की यह रूढ़ि ही जन्मजात जाति-भेद का अत्यन्त प्रबल आधार था; परन्तु हिन्दूराष्ट्र के सुदैव से रूढ़ि का बन्धन आज बहुत-कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्छिन्न हो चुका है; किसी भी जाति का कोई भी व्यक्ति आज किसी भी व्यवसाय को अपना सकता है, उस व्यवसाय में उसकी योग्यता के अनुसार वह प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर सकता है। उसकी उक्त प्राप्ति में निर्बन्ध (कानून) किसी भी प्रकार से बाधक नहीं बनता, इतना ही नहीं, तो यदि कुछ अपवादों को छोड़ दें तो उसकी जाति भी किसी प्रकार बाधक नहीं बनती। ब्राह्मण आज दर्जी, सुनार, डॉक्टर, बनिया आदि किसी भी व्यवसाय को निर्बन्ध के अनुसार (कानूनी रूप से) तो कर ही सकता है, पर उसके जाति नियम के अनुसार भी व्यवसाय-स्वतन्त्रता के लिए आज कोई भी बाधा न होने से वह व्यक्ति उन व्यवसायों को करने के उपरान्त भी विशुद्ध ब्राह्मण तो बना ही रहता है। वही अवस्था अन्य वर्णों की भी! पूर्वास्पृश्यों के विषय में भी 'निर्बन्ध' का बन्धन अब नहीं रहा है। आज कोई भी अछूत किसी भी स्वतन्त्र व्यवसाय को यदि करें—बनिया, बढ़ई, डॉक्टर, बैरिस्टर, शिक्षक बनें—तो जाति के निमित्त को लेकर निर्बन्ध (कानून) उसे नहीं रोकता। परन्तु समाज का अप्रत्यक्ष उपद्रव भर उसे अभी भी सहना पड़ता है। पर उसे चाहिये कि वह उसका सामना करे और यदि आवश्यक हो तो नैर्बन्धिक सहायता लेकर उस उपद्रव को ठीक करें। व्यवसाय-बन्धन आज तक भी यदि कहीं टूट न पाया हो तो ऐसे व्यवसाय केवल दो हैं—भट्ट का एवं भंगी का—उसमें भी निर्बन्ध तो बाधक नहीं बनता, पर रूढ़ि भर बाधक बनती है। ऐसी अवस्था में, व्यवसाय-बन्धन के विषय में सुधारवादियों के लिये केवल इतना ही काम शेष है कि वे उक्त दो अपवादों का उच्छेद करें। कार्य उन्हें करना ही चाहिये तथा उन्हें ही करना चाहिये। उनमें से भंगी के व्यवसाय का एकाधिकार (मोनोपोली) तोड़ने के दो उपाय हैं—एक यह कि प्रत्येक अवसर पर भंगीजनों से सम्मानपूर्वक व्यवहार करें; उन्हें साथ लेकर, उनके हाथों-में-हाथ डालकर प्रकट रूप से हेतुतः ही घूमें; अपने घरों में, सर्वसाधारण रूप से जहाँ तक स्पृश्य आ सकते हैं वहाँ तक भंगी को भी बेखटके आने दें; विशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से समाज के ध्यान में आ जाये ऐसे बहुत-कुछ दिखावटी ढंग से उन्हें प्रत्येक स्थान पर सम्मानित किया जाये, जिससे कि भंगी का व्यवसाय नीच है यह भावना नष्ट होकर, समय आने पर अन्य जातियाँ भी उस भंगी के व्यवसाय में उतरने में नहीं कतरायेंगी; तथा दूसरा उपाय यह है कि सुधारवादी अवसर पाते ही जान-बूझकर, भंगी का काम सार्वजनिक रूप से करें। कभी कुछ दिनों तक वही नौकरी करें। सुशिक्षित सुधारवादियों को तो चाहिये कि भंगियों की हड़ताल होने पर तो वे हेतुतः ही भंगी के समस्त काम स्वतः कर नगर-ग्रामों को स्वच्छ रखें। स्वतः का भंगी कौन नहीं है! त्रिकाल नहाने वाला स्नातक भी स्वयं का भंगी कर्म स्वयं ही करता है। कोई बड़ा चक्रवर्ती राजा भी हो, तो वह उसके अन्य समस्त कार्य सेवकों से करवा सकता है; पर स्वतः के भंगी का काम तो उसका उसे ही करना होगा। वह राजा होने पर भी वह काम किसी अन्य व्यक्ति पर नहीं सौंपेगा। सुधारवादियों को प्रचार करके यह सीख तो देनी ही चाहिये, पर साथ ही अवसर प्राप्त होने पर स्वतः ही प्रकट रूप से—सार्वजनिक रूप से भंगी का काम पुनः-पुनः करके दिखाकर आचरण भी करना चाहिये।

भट्ट का व्यवसाय-बन्धन तोड़ने के उपाय निम्नानुसार हैं—पहला यह कि, जहाँ तक सम्भव हो ब्राह्मण सुधारवादियों को चाहिये कि वे भट्ट को निमन्त्रित ही न करें। अपने घर के व्रत, सत्यनारायण की पूजा, अन्य पूजापाठ आदि स्वयं करें। विवाहों को भी नैर्बन्धिक पंजीयन पद्धति से करें, जिससे ब्राह्मण सुधारवादियों को सहभोज आदि सुधारों में प्रकट रूप से भाग लेने में 'नहीं तो भट्टजी आयेंगे ही नहीं!' यह जो कठिनाई सदा की भाँति निश्चित रूप से होती है, वह मूलतः नष्ट ही हो जाएगी। दूसरा उपाय यह है कि, अब्राह्मण सुधारवादी भट्टों को यह स्पष्ट बन्धन (शर्त) डाल दें कि, 'यदि आप हमारे यहाँ वेदोक्त संस्कार कर सकते हैं तो ही आने का कष्ट करें।' गणगौर, गणेशचौथ आदि अवसरों पर भट्टों से वेदोक्त पूजा करवाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर वेदोक्त बन्धन निश्चित रूप से टूट ही जावेगा। अपनी वृत्ति से वंचित होने की अपेक्षा बड़े-बड़े सेठों के या सरदार धनवान अब्राह्मणों के घर पर वेदोक्त पूजा करना स्वीकार करने वाले भट्ट मिल जाते हैं यह प्रयोगसिद्ध बात है। उदाहरण के लिये देखिये, प्रत्यक्ष रत्नागिरी में यह हो रहा है। पर अब्राह्मण सुधारवादी भी भट्टों को यह बन्धन (शर्त) लगाने में झिझकते हैं। ऐसी अवस्था में भट्ट की अपेक्षा ऐसे वाचाल सुधारवादियों का ही अधिक दोष है ऐसा कहना पड़ता है। अब्राह्मण सुधारवादियों को तो चाहिये कि, जहाँ सम्भव हो वहाँ भट्टों का व्यवसाय-बन्धन तोड़ने के लिए ही वे हेतुत: पण्डिताई सीख लें। देवल, जंगम, जोशी आदि अब्राह्मण भट्टों की भट्टशाही भी ऐसे ही उपायों से तोड़नी चाहिये। भट्टों की भट्टशाही सर्वथा यजमानों के भोलेपन के कारण ही है। उसमें भट्ट का अपराध असत्य है, यह बात सुधारवादियों को कभी विस्मृत नहीं करनी चाहिये। इस पर उत्कृष्ट उपाय यही है कि हम भट्ट को कभी निमन्त्रित ही न करें। समस्त भोलेभाले लोगों को चाहिये कि निरर्थक व्रत—मानता के रहस्ययुक्त आडंबर को छुट्टी देकर विवाह आदि सामाजिक विधियों को नैर्बन्धिक अनुबन्ध के स्वरूप में नैर्बन्धिक पंजीयन पद्धति से करें; समस्त पूजा-प्रार्थनाएँ स्वत: की भाषा में भक्तिभाव से स्वत: ही करें।

(२) स्पर्शबन्धन

जन्मजात जातिभेद का दूसरा पैर स्पर्शबन्धन है, परन्तु वह प्रथम व्यवसाय-बन्धन के पैर की भाँति, आज जो भी पूर्व से ही लूला नहीं है, तो भी चारों दिशाओं से उस पर मार पड़ने के कारण वह भी अब बहुत अपंग हो रहा है। फिर भी इस स्पर्शबन्धन को उखाड़ फेंकने के लिए आगामी दस-बारह वर्षों तक सुधारवादियों को पराकाष्ठा के प्रयास करने होंगे। व्यवसाय-बन्धन के समान यह स्पर्शबन्धन यच्चयावत् हिन्दू समाज को पीड़ित नहीं कर रहा है। स्पृश्य माना जाने वाला बीस करोड़ हिन्दू इस बला से मूलत: ही मुक्त है, शेष तीन-चार करोड़ हिन्दुओं को भर उनके जन्मत: ही स्वस्थ तथा सुदृढ़ होने पर भी, इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारोग का विष समाज की ओर से बलपूर्वक दिया जाता है और उनका जीवन प्रत्यक्ष महारोग से ग्रस्त अभागे से भी अधिक अभागा दुर्धर, धीक्कृत एवं अमंगल बनाया जाता है।

पर, केवल 'स्पृश्य' ही अस्पृश्यों का इस प्रकार का क्षय करते हैं ऐसी बात नहीं, तो 'अस्पृश्य' भी दूसरे 'अस्पृश्यों' का ऐसा ही क्षय करने में नहीं चूकते। गाँव के कुएँ पर जब कौए, कुत्ते, फुदकते रहते हैं, पानी पीते रहते हैं, तब अपराह्न में प्यास से व्याकुल बना बसोड़ भर उस पानी को छू भी नहीं सकता। ऐसी अवस्था में, अभद्र शब्दों का प्रयोग कर ब्राह्मण, क्षत्रियों द्वारा वहाँ से हटाया हुआ वह बसोड़ उन्ही ब्राह्मण-क्षत्रियों को 'ये क्रूर राक्षस हैं' कहकर गाली देता है, तब वह गाली वरदान न होकर सत्यकथन ही होता है ? पर बसोड़ वस्ती के कुएँ पर भंगी भी यदि उसी प्रकार प्यासा, वैसी ही दुपहर में, और उसी प्रकार पानी को स्पर्श करने लगे तो वे ही बसोड़ उन ब्राह्मण, क्षत्रियों के समान ही गालीगलौज कर उसे भगाने में नहीं चूकते ? ब्राह्मण को 'पाजी' कहनेवाला ढेढ़ स्वयं ही भंगी का ब्राह्मण बन जाता है ? भंगी को उसी प्रकार छलने के 'पाजी' पन में रत्तीभर भी कमी नहीं करता है ? नासिक के राममन्दिर-सत्याग्रह के समय बसोड़ लोग जब अपना भगवत्दर्शन का अधिकार—अपना हिन्दुत्व का न्यायपूर्ण अधिकार जताने लगे, तब देवताओं में भी अस्पृश्यता की संस्था घुसेड़कर, 'स्पृश्य' देवता तथा 'अस्पृश्य' देवता ऐसा भेद निर्मित कर, जब कतिपय भट्टों ने, सेठों ने, उन बसोड़ों के सर लाठियों से फोड़ दिये तब सात्विक क्रोध से जो बसोड़ बिगड़ पड़े, उन बसोड़ों को यह कदापि भूलना नहीं चाहिए कि यदि उनके किसी मरीमाता के मन्दिर में भगवत्दर्शन के उसी हिन्दुत्व के अधिकार हेतु भंगी लोग यदि प्रवेश का प्रयास करते तो बसोड़ भी उतनी ही लम्बी लाठियों से, उनके सर फोड़ने में किसी भी प्रकार कोई कमी न करते ?

अर्थात् स्पर्शबन्धन तोड़ने के लिए केवल 'स्पृश्य' सुधारवादियों को ही नहीं, तो 'अस्पृश्य' सुधारवादियों को भी चाहिये कि वे परस्पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहकार्य कर यत्नों की पराकाष्ठा करें।

इस प्रकार के संक्षिप्त लेख में अशेषरूप से फुटकर उपाय सुझाना असम्भव है। यहाँ पर तो केवल सर्वसाधारण रूपरेखा के अंकन तथा दिग्दर्शन-पुरता कुछ विशिष्ट उपाय सुझाना भर ही सम्भव है। अत-एव, स्पर्शबन्धन को तोड़ने के कार्यक्रम के विषय में यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि अस्पृश्यता दूर करने के माने दूसरा, तीसरा कुछ न होकर केवल 'छूना' यही है। अस्पृश्योद्धार—उन्हें शिक्षा, नौकरी, निवास, सुविधा आदि सहायता देना यह भी जाति भेदोच्छेद का विषय नहीं है। जाति-भेदोच्छेदन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल जन्मजात अस्पृश्यता को तोड़ने पुरता ही भर है। न छूने के माने, अस्पृश्यता, अर्थात् छूना माने अस्पृश्यता नष्ट करना। रोटी-बन्धन, बेटी-बन्धन वेदोक्तबन्धन आदि जन्मजात, जाति-भेद के अन्य सुधार उसकी आगे की सीढ़ियाँ हैं और वे तो स्पृश्यों को भी लागू होती हैं। अस्पृश्यों का गट 'स्पृश्य' कर दिया कि, स्पर्शबन्धन टूट गया? अर्थात् अन्य विभिन्न अल्पसंबद्ध या असंबद्ध प्रश्नों की इन प्रश्नों से उलझन करने से, स्पर्शबन्धन की बेड़ी को तोड़ना जहाँ एक ओर से इतना दुर्घट कार्य प्रतीत होता है वहीं दूसरी ओर से इतना सरल भी हो जाता है कि—केवल छूना? बस इतना करने से जन्मजात जातिभेद का एक पैर खट् से उखड़कर चार करोड़ हिन्दू-बन्धुओं को मानवजाति में लाकर छोड़ने का महत्कृत्य जिसका उसने उसके पुरता तो पूरा किया ऐसा समझने में कोई आपत्ति नहीं। अत: ऐ हिन्दू संगठक, उठो, अन्य कोई चाहे जो करे, तुम तुम्हारे पुरता भर इस क्षण से यह व्रत ले लो कि 'कुत्ते-बिल्ली को जो उंगली मैं लगाता हूँ वही उंगली में मेरे 'अस्पृश्य' धर्मबन्धु को—मानव को, नित्यप्रति लगाये बिना मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगा।' सर्वसाधारण स्पृश्यों को हमारे घरों में हम जहाँ तक प्रवेश देते हैं उतना प्रवेश अस्पृश्य को भी देना चाहिये, जिन्हें अपने घर भाड़े से देना हो उन्हें चाहिए कि वे स्पृश्यों के समान, अस्पृश्यों को भी वे घर भाड़े से दें, जिनके स्वत: के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार के कुएँ हों उन्हें चाहिए कि वे स्पृश्यों के अनुसार अस्पृश्यों को भी उनसे पानी भरने दें जान-बूझकर, प्रदर्शन के हेतु ही बसोड़, भंगी आदि धर्मबन्धुओं के हाथों में हाथ डालकर यथाप्राप्य अवसरों पर रास्तों में, बाजारों में, यात्राओं में प्रकट रूप से घूमें। संक्षेप में जो कोई भी अस्पृश्य मिल जाए उसे स्पृश्य समझकर ही उसके साथ वे सभी व्यवहार प्रतिदिन एक बार प्रकट रूप से सबके सम्मुख किये बिना दिन डूबने ही नहीं देना चाहिये। 'अस्पृश्य' सुधारवादी को चाहिये कि वह इसी व्रत को अपना कर स्वयं से 'निकृष्ट' अस्पृश्य को स्पृश्यत्व का अधिकार देकर दिन में एक बार तो अवश्य ही छूए। चमार ढेढ़ को, बसोड़ भंगी को स्पृश्य समझकर दिन में एक बार तो अवश्य ही छूए। संगठक सुधारवादियों में से प्रत्येक व्यक्ति यदि बकवाद करना छोड़कर, इस प्रकार के कृतिवाद का आचरण करें, तो इतना करने से भी दस वर्षों के पश्चात् सारे समाज में अस्पृश्यता का अता-पता भी नहीं मिलेगा, इतनी अच्छी संख्या संगठक सुधारवादियों की आज हो चुकी है।

अस्पृश्य सुधारवादियों को वैयक्तिक रूप में एक व्रत और लेना होगा। निर्बन्ध (कानून) के द्वारा आज अनेक पाठशालाएँ, कचहरियाँ धर्मशालाएँ, कुएँ, वाहन, आदि स्थानों में अस्पृश्यता का उच्चाटन किया गया है। उन समस्त नैर्बन्धिक (कानूनी) सुविधाओं का प्रत्यक्ष उपयोग प्रत्येक अस्पृश्य सुधारवादी को बड़ी ही हठवादिता से करना चाहिये तथा उन्हें आत्मसात भी करना चाहिये। विशेष रूप में आज यह कार्य बहुत ही सरल है, क्योंकि, इस कार्य में निर्बन्ध की सहायता सुधारवादियों के पक्ष में है। इस सम्बन्ध में श्री राजभोज (अस्पृश्य नेता) ज़िला बोर्डों के कुओं पर अस्पृश्यों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में पानी भरवाने का जो तीव्र प्रयास कर रहे हैं तथा नागपुर आदि प्रदेशों में निर्बन्ध के अनुसार मुक्त होनेवाले तालाब आदि स्थानों का प्रत्यक्ष उपयोग कर लेने की परम्परा उधर के अस्पृश्य नेता लड़-झगड़कर, समय पड़ने पर सत्याग्रह करके भी जो डाल रहे हैं उसका अनुकरण प्रत्येक 'अस्पृश्य' को, सभी क्षेत्रों में करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु आज अस्पृश्यों को ये जो नैर्बन्धिक अधिकार प्राप्त हुए हैं 'उन सबमें अत्यन्त परिणामकारक अधिकार है शिक्षा संस्थाओं में बालकों को अभिन्नता से एकत्रित बैठाने का। तालाब, कुएँ आदि पर अपना अधिकार जताने के पूर्व इस अधिकार को प्रत्येक अस्पृश्य को जताना चाहिए। बालक यदि पाठशालाओं में नित्यप्रति अस्पृश्य-स्पृश्य भाव को विस्मृत करना सीख जायें तो भावी पीढ़ी को धोबी आदि के समान बसोड़-भंगी भी पूर्णत: एवं सहज रूप से तथा निश्चित ही स्पृश्य लगने लगेंगे—केवल अभ्यस्त होने के कारण! बचपन से ही अभिन्नता से हँसते-खेलते एकत्र रहने के कारण वे यह भी भूल जाएँगे कि वे कभी अस्पृश्य भी थे। स्पृश्य बालकों के साथ—जमींदार, अभिभाषक, सेठजी, आदि के बालकों के साथ नित्यप्रति प्रेमभाव से एकत्र बैठने से अस्पृश्य बालकों का रहन-सहन सुधरता है तथा अमुक अवसरों पर बौद्धिक प्रतिस्पर्धाओं में अस्पृश्य बालकों का क्रमांक ब्राह्मण आदिकों से भी ऊपर लगा होने से एक ओर अस्पृश्यों का आत्मविश्वास बढ़ता है तो दूसरी ओर स्पृश्यों का अहंकार घटता है। आज पाठशालाओं में अस्पृश्य बालक अभिन्नता से बैठने लग जायें तो कल वे अस्पृश्य बालक आप-ही-आप 'पूर्वास्पृश्य' हो ही जाएँगे! उसमें भी पाठशालाओं में अभिन्नता से एकत्र बैठने के सम्बन्ध में जो शासकीय निर्बन्ध कानून हैं वह भी अस्पृश्यों के ही पक्ष में होने के कारण, मन्दिरप्रवेश से भी अधिक परिणामकारक होने वाला यह उपाय अधिक सहजसाध्य भी सिद्ध होता है।

इसीलिए, मन्दिर-प्रवेश का प्रश्न आज के लिए तो द्वितीय श्रेणी का माना जाये—कम-से-कम पाठशाला प्रवेश से तो! क्योंकि, मन्दिरों के सम्बन्ध में प्रबन्ध, व्यक्तिगत भत्ता आदि सभी विषयों में निर्बंध (कानून) अस्पृश्यों के विरुद्ध होगा यह निश्चित है। मन्दिर-प्रवेश का प्रश्न सम्मुख रखकर चढ़ाई करके जन्मजात जातिभेद में सुरंग लगाने का, न्यूनतम विरोध का तथा अधिकतम परिणाम का मार्ग है, जातिनिर्विशेष समानता के दृढ़ आधार पर रत्नागिरी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतितपावन मन्दिर के समान एक-एक अखिल हिन्दू मन्दिर प्रत्येक नगर में स्थापित करना तथा उसे सफल कर बताना। पुराने मन्दिर धड़ाधड़ खोल देने चाहिये, वे खोले भी जाएँगे, पर उन पर सामने से चढ़ाई करके नहीं तो, अखिल हिन्दू देवालयों की या धर्मालयों की सुरंग उनके मर्मस्थान में ही बिछाकर उनके विस्फोट के साथ समाज-भावना में ही क्रान्ति लाकर।

(३) रोटी-बन्धन

वर्तमान अवस्था में जन्मजात जाति-भेदों का उच्चाटन यदि किसी विशिष्ट रूढ़ि के उच्चाटन में ही बहुतांश में निहित हो तो वह इस रूढ़ि के उच्चाटन में ही निहित है। क्योंकि व्यवसाय-बन्धन तो टूट ही चुका है, स्पर्श-बन्धन समस्त हिन्दू समाज के लिए लागू न होकर केवल अस्पृश्यों के लिए ही भर है, और आज टूट भी रहा है। ऐसी अवस्था में रोटी-बन्धन के टूटने से बसोड़ों के साथ ब्राह्मण भी यदि भोजन करने लगे, तो वह स्पर्श करेगा या नहीं, यह प्रश्न ही नहीं रहता। हाथी को निगलनेवाला चींटी को चट करने में थोड़े ही झिझकेगा ? तथा बेटी-बन्धन का खण्डन रोटी-बन्धन के खण्डन के समान आवश्यक तथा कठिन क्यों नहीं है इस बात को हम आगे स्पष्ट कर ही रहे हैं। इस प्रकार वर्तमान जाति-भेद के इन चार पैरों में से प्रमुख रूप से जिस पैर पर प्रहार करते ही जाति-भेद की यह भारी-भरकम देह नीचे गिरनेवाली है वह पैर है, रोटी-बन्धन ? प्रस्तुत हजारों जातियों को एक-दूसरी से पृथक् करनेवाले प्रमुख तथा सर्वगामी जीवित लक्षण हैं रोटी-बन्धन एवं बेटी-बन्धन। इनमें से रोटी-बन्धन जात्युच्छेदन के सार्वजनिक तथा त्वर्य (अर्जेन्ट) कार्य-क्रम में बहुत ही थोड़े प्रमाण में जो बाधक बनता है, वह कैसे बनता है उसे आगे देखेंगे। पर यह रोटी-बन्धन भर तत्काल तोड़ देना ही चाहिये। और उसके टूटने के माने ये हैं कि जन्मजात जाति-भेद में जो कुछ थोड़े-से प्राण आज शेष हैं उनके मर्मस्थान में ही वह एक प्रहार होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोटी-बन्धन तोड़ने का साधन भी इतना सरल है कि विश्वास ही नहीं होता, केवल भोजन करना—? भिन्न जातियों के साथ भोजन करना ? बस, फिर यह इतना दुर्गम, दुस्साध्य प्रतीत होने-वाला जाति-भेद का प्रचण्ड किला घहराते हुए ढह जाएगा। एक होकर लड़ने से जाति-भेद कभी भी समाप्त नहीं होगा; परन्तु एक होकर भोजन करते ही वह जहाँ-का-तहाँ मर जाएगा। अतएव प्रत्येक सच्चे सुधारवादी को इस सत्य का प्रकट रूप से प्रचार करना चाहिए कि 'जो रुचता हो, जो पचता हो, उसे वैद्यकीय दृष्टि से योग्य किसी भी व्यक्ति को खाना चाहिये—पीना चाहिये ?' फिर वह हिन्दू हो, मुसलमान हो या अन्दमानीज हो—किसी के भी साथ खाने से, पीने से, सहभोजन से या सहपान से जाति नहीं जाती ? धर्म डूब नहीं जाता ? सहपान या सहभोजन यह वैद्यक शास्त्रीय प्रश्न है; उन धर्मशास्त्रों का नहीं है जो यह कहते हैं कि समूची जाति-की-जाति या धर्म-का-धर्म चावल के पसाव के बुदबुदे में डूब जाता है ? यदि कोई संगठक सुधारवादी हमसे यह पूछे कि प्रस्तुत स्वरूप के इस पोथीनिष्ठ जाति-भेद की मृत्यु निश्चित रूप से किस बात में निहित है ? तो हम ठीक एक शब्द में प्रयोगसिद्ध यह सत्य कहेंगे कि—सहभोजन ? सहभोजन ?? सहभोजन ???

प्रस्तुत पोथीनिष्ठ जाति-भेद की मृत्यु सहभोजन में निहित है; पर उसके बन्धन (शर्तें) इस प्रकार हैं—(अ) सहभोजन का सिद्धान्त हमें स्वीकार है। ऐसी वाचालता करते हुए प्रत्यक्ष रूप से सहभोजन में भाग लेने में कतराना नहीं होगा। (आ) अन्य कोई व्यक्ति सहभोजन में भाग ले या न ले, अन्य जाति के किसी एक व्यक्ति के उपलब्ध होते ही हमें उसके साथ भोजन करना चाहिये और रोटी-बन्धन को अपने पुरता तो तोड़ना ही चाहिए। (इ) भविष्य में कभी, जीवन में एक बार उसे तोड़ेंगे, तो फिर अभी ही जान-बूझकर क्यों तोड़ें ? ऐसा पूछते हुए सारे जीवन में कभी भी सहभोजन के क्षेत्र में पग न रखनेवाली भीरुता या सभ्यता को व्यर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समझकर नित्यप्रति अवसर आने पर नित्यप्रति सहभोजन करना चाहिए। नित्यप्रति ब्राह्मण-भोजन करनेवाला व्यक्ति यदि बहुत ही पुण्यवान् माना जाता है, तो नित्यप्रति सहभोजन करनेवाला भर नटखट क्यों माना जाए ? (ई) प्रत्यक्ष सहभोजन प्रकटरूप से होना चाहिये। यथासम्भव नामों को भी प्रकाशित किया जाना चाहिये। ईरानी होटलों में जिस प्रकार 'पुरोहितजी' अचानक पकड़ में आते हैं तथा कालेजों में या कलेक्टरम्लेच्छों के साथ चुपके से भोजन करनेवाले अभिभाषक या उपाधिकारी हमारे रोटी-बन्धन आर्यसंस्कृति का प्रकट रूप से बहुत ही स्तुतिगान करते हुए जिस प्रकार गली-कूंचों में दिखाई देते हैं, वैसे ही मिथ्याचारी सुधारवादी भी दुष्प्राप्य नहीं हैं। उनका क्या उपयोग ? (उ) प्रत्येक सहभोजन में यथा-सम्भव 'अस्पृश्य' व्यक्ति अवश्य हो। सहभोजन की वही सच्ची क्षार-परीक्षा (अेसिडटेस्ट) है ? नहीं तो केवल ब्राह्मणों की पंगत में सहभोजन करने के लिए ललचाये हुए, पर बसोड़ों के साथ बैठते ही 'आज पेट बहुत भारी है, थोड़ा-सा दूध लेता हूँ,' ऐसी बहाने-बाजी करनेवाले 'समाजिस्ट' कोई कम नहीं मिलते !

अनुभवजन्य निश्चितता से हम यह कहते हैं कि इस प्रकार प्रत्यक्ष आचरण करनेवाले पाँच सौ संगटक सुधारवादी यदि पुनः-पुनः सहभोजन करते रहे, तो पांच हजार की बस्तीवाले नगरों से रोटी-बन्धन की रूढ़ि को उखाड़ फेंक सकते हैं। भोजन के साथ जाति-भेद मारा जाता है, पर वह किस प्रकार मारा जाता है उसे लेखनमर्यादा के कारण हम विस्तार से कहने नहीं बैठेंगे, तूमार आवश्यक भी नहीं है। सच्चे संगठक सुधारवादियों को हम यह विश्वास दिलाते हैं कि पहले आप स्वयं करके देखो, यदि फल प्राप्त न हो तो फिर इसका विस्तृत समर्थन हमसे मांगने बैठना बहिष्कार होंगे ही ? परन्तु पांच सौ अध्यवसायी सहभोजक सुधारवादियों पर बहिष्कार डालनेवाली पांच हजार लोगों की बहुसंख्या भी अन्ततो-गत्वा निढाल हो जाती है; क्योंकि बहिष्कार तो दुधारी शस्त्र है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए उसे उठानेवाले को भी वह काटता है। सच्चा सुधारवादी दृढ़ विचारोंवाला होता है, बहुसंख्या उस प्रकार नहीं होती है। यदि संख्या का प्रमाण यही हो तो, इस रोटी-बन्धन के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि बहुसंख्या या बहुजनसमाज इस बात के आज मनःपूर्वक विशेष विरुद्ध न होने के कारण कष्ट सहन करने इतना चीमड़ नहीं रहता और अन्ततोगत्वा उसकी दृष्टि नष्ट होकर, उसमें उसे कुछ विशेष चिढ़ने जैसा भी नहीं लगता और फिर जलयान में अशौच नहीं होता इस शास्त्र का जिस प्रकार जन्म हुआ उसी प्रकार सहभोजन से जाति नहीं जाती यह शास्त्र भी उसे अनजाने से ही समझ में आ जाता है—जँच जाता है।

(४) बेटी-बन्धन

जाति-भेद को तोड़ने की बात को करते ही सर्वसाधारणतः अधिकांश लोगों को जो धक्का लगता है वह इसीलिए लगता है कि वे यह सोचते हैं कि जाति-भेद के तोड़ने से भयंकर गड़बड़ी हो जायेगी—ऐसी उनकी कल्पना होती है। तो अब सैकड़ों ब्राह्मण कन्याएँ बसोड़ों की बस्ती में ठूंसी जाएँगी, तथा चमारों की क्षत्रियों में घुस आएँगी। ऐसी एक भयंकर कल्पना जाति-भेद को तोड़ने की बात करते ही लोगों के सम्मुख उपस्थित हो जाती है। रोटी-बन्धन को तोड़कर बसोड़ों की पंगत में ब्राह्मणों का भोजन होनेवाले सहभोजन से भी एक बार उन्हें इतना धक्का नहीं बैठता; पर बेटी-बन्धन को तोड़ने का नाम लेते ही वे बहुत घबरा जाते हैं। विरुद्ध-पक्ष में कई सुधारक विशेषतः गरम दल के अस्पृश्य जाति-भेद को तोड़ना अर्थात् ब्राह्मण कन्याएँ हमारी जातियों में ब्याहनी चाहिए, इसी बात को सीधा जोर दे-देकर कहते हैं।

परन्तु वास्तव में देखा जाये तो उन प्रथम पक्षियों का भय एवं इन द्वितीय पक्षियों की आकांक्षा एक समान ही असत्य एवं अतिरेक-पूर्ण है। क्योंकि, बेटी-बन्धन को तोड़ने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि किसी एक व्यक्ति या वर्ग की कन्याएँ किसी दूसरे व्यक्ति या वर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में 'ब्याहनी ही होंगी'। ब्राह्मणों की या वणिकों की कन्याएँ हमारी जाति में 'ब्याहनी ही होंगी' ऐसा कहने वाले अस्पृश्य भी उस सौदे के प्रतिमूल्य का प्रश्न निकलते ही धक्का खाकर 'नहीं, नहीं, ब्याहनी ही होंगी ऐसा नहीं!' ऐसा कहते हुए हिचकिचाने लगते हैं; क्योंकि, वह प्रतिमूल्य उन्हें ही नहीं पुराता। जाति-भेद के उच्छेदन हेतु ब्राह्मण-वणिकों की एक सौ कन्याएँ यदि बसोड़-चमारों से 'ब्याहनी ही होंगी', तो उसी बन्धन (शर्त) के अनुसार बसोड़-चमारों की एक सौ कन्याएँ भंगियों से तथा ढेढ़ों से 'ब्याहनी ही होंगी', इस प्रकार कहते हुए भंगियों के द्वारा विवाह का प्रस्ताव रखे जाने भर का ही विलम्ब है कि उन्ही बसोड़ तथा चमार गरमदलियों की अवस्था भीख न दो, पर अपना कुत्ता तो सम्हालो ऐसी हो जाती है और फिर वे भी विवेक की भाषा बोलने लगते हैं।

वह विवेक इस प्रकार है—अमुक व्यक्ति को अपनी कन्याएँ 'ब्याहना' चाहिये यह विचार ही मूलतः असह्य है तथा वर्तमान में असम्भव भी। आजकल की कन्याएँ सयानी होती हैं, दिन-ब-दिन उनके वरों का चयन वे स्वतः ही करेंगी। हमें 'ब्याहने वाले' आप कौन होते हैं ऐसा वे अपने माँ-बाप को भी टोकती हैं। वहाँ किसी पराये ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे को कौन पूछता है। दूसरा यह कि बसोड़, बनिया, बंगाली, मरहठे का किसी दिन थोड़े से समय के लिए साथ में बैठकर सहभोजन करना अलग बात है और भाषा, वेषभूषा, आहार, आचार में भिन्न होने वाली किसी कन्या को पूर्णतः अपरिचित ऐसे किसी भिन्न रहन-सहन में ढकेलना या जाना पड़ना यह अलग बात है! यदि भविष्य में कभी रोटी-बन्धन निर्बन्ध के द्वारा (कानून से) तोड़ दिया जाये, तो भी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण कन्या को बंगाली ब्राह्मण के घर ब्याहने को भी एक हज़ार में नौसौ-निन्यानवे लोगों को भी नहीं पुरायेगा, नहीं जमेगा, क्योंकि जाति-विचार भी यदि छोड़ दें, तो भी विवाह जैसे आजकल के शरीर-सम्बन्ध के विषय में सुविधा का विचार तो अवश्य ही किया जाएगा। उन मरहठी तथा बंगाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण वधु-वरों की रुचि-अरुचि का मेल खाना भी दुर्घट है। मरहठी ब्राह्मण वधुएँ उन बंगाली ब्राह्मणों के घर, अपनी ससुराल में जाते ही वहाँ के लोग बंगला में बोलेंगे, और ये उत्तर देंगी मरहठी में ? 'मराठन ने किया बंगाली पति ? किसी को किसी की न बात पल्ले पड़ती !' फिर जब नहा-धोकर साड़ियाँ बदलते हुए वे बंगाली सासें, जेठानियाँ, देवरानियाँ बिना काँछ की साड़ियाँ पहनेंगी; तब उनके जैसी बिन काँछ की साड़ी पहनकर उन सबके सम्मुख विचरना उसकी जान पर आयेगा ! जब सासुजी भोजन पकाने बैठ जाएँगी तो इसे कहेंगी, 'ये चार मछलियाँ छील दे तो।' भोजन करते समय वे बंगाली ब्राह्मणों की पद्धति के अनुसार मछली के रस्से का झोल सुड़क-सुड़ककर सुड़केंगी ! तब यह मरहठी ब्राह्मण-कन्या उस मछली भोजन की महक के साथ ही एँ-एँ करके उलटी करेगी ! और यदि बार-बार मायके आएँ तो आने-जाने का एक वर्ष का व्यय विवाह के व्यय के बराबर होगा ! एक प्रदेश की कन्याएँ दूसरे प्रदेश के स्वजातियों में ब्याहने की यह जो बात है, वही बात एक ही गाँव में बसोड़ की कन्या मरहठे के यहाँ या चमार की कन्या बसोड़ के घर ब्याहने की है। दूरी, भाषा, रहन-सहन, आदि सुविधाएँ-असुविधाएँ तथा रुचि-अरुचि के कारण रोटी-बन्धन तत्वतः यदि टूट भी जाये तो भी, एक जाति की कन्याएँ सैकड़ों की सख्या में अन्य जातियों में धकेल दी जाएँगी ऐसा जो भय लगता है वह इसलिये पूर्णतः काल्पनिक है कि वैसा कभी हो ही नहीं सकता। इंग्लैंड और स्काटलैंड इनमें आपस में जातीय आधार पर बेटी-बन्धन नहीं है। पर इसी सुविधा या असुविधा के कारण हज़ारों में एक इंग्लिश-कन्या लन्दन में पीढ़ियों से रहते हुए भी स्काटलैंड में ब्याही जाती है या नहीं, इसमें शंका ही है। लन्दन की कन्याएँ प्रायः लन्दन के आसपास ही अपने वर को निश्चित कर लेंगी। यदि जातीय स्वरूप का बेटी-बन्धन तत्वतः टूट जाये तो यही अवस्था पूना, मद्रास, कलकत्ता, रत्नागिरी की भी होगी; वहाँ की कन्याएँ प्रायः अपने पास-पड़ोस के गाँवों में तथा स्वजाति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही अपनी ससुराल ढूंढ़ेंगी, अपना वर स्वयं निश्चित कर लेंगी; अतः बेटी-बन्धन यदि टूट भी जायें तो भी नित्यप्रति के व्यवहार में, अकस्मात्-स्वरूप की कुछ विशेष उथल-पुथल होना सम्भव नहीं है। फिर बेटी-बन्धन को तोड़ने का अर्थ क्या है? उसका अर्थ है—

'बेटी-बन्धन तोड़ने के माने ऐसी कोई आज्ञा नहीं है कि इस जाति की कन्याएँ उन जातियों में 'ब्याहनी ही होंगी', परन्तु इसके माने यह हैं कि यदि कोई हिन्दू दयालुता, सुप्रजनक्षमता आदि वैवाहिक गुणों से युक्त किसी अन्य जाति के हिन्दू वधू-वर को पसन्द कर लें तो केवल इसीलिए कि उसकी जाति भिन्न है, उस विवाह को निषिद्ध न माना जाये या उस कारण से उन वधू-वरों को पूर्णतः सव्यवहार्य मानने में आपत्ति न हो, ऐसी एक अनुज्ञा है।'

ऐसी मिश्र-विवाह की अनुज्ञा जन्मजात जाति-भेद को तोड़ने की दृष्टि से ही नहीं, शुद्धि आन्दोलन को पचाने की दृष्टि से भी आवश्यक है, हिन्दूराष्ट्र के संगठन के लिये उपकारक तथा अपरिहार्य है।

बेटी-बन्धन को तोड़ने की एक मर्यादा का भर मानव प्रगति की वर्तमान अवस्था में तथा हिन्दूराष्ट्र की आज की विशिष्ट परिस्थिति में निरपवाद रूप से पालन करना आवश्यक है। और वह मर्यादा यह है कि हिन्दू आपस में किसी भी जाति में विवाह करें तो चिन्ता की बात नहीं है; परन्तु हिन्दुत्व की कक्षा के बाहर जाकर मुसलमान, क्रिश्चियन आदि से किसी को भी विवाह करना नहीं चाहिये। जब तक मुसलमान, मुसलमान ही रहना चाहता है तब तक हिन्दू को हिन्दू ही रहना चाहिए, उस विवाहेच्छुक स्त्री या पुरुष को हिन्दू बनाये बिना उन अहिन्दुओं से विवाहबद्ध होना हमारे हिन्दूराष्ट्र के सामूहिक हित के लिए अत्यन्त अनिष्ट है। जब वे दुराग्रही अहिन्दू केवल मानवता-धर्म को पूजने लगेंगे तथा मुसलमानत्व छोड़कर मानवता में ही समाविष्ट हो जाएंगे तब हिन्दू भी उसी मानवता-धर्म के अनुसार मानव-मानव में किसी भी जातिधर्म की, देश की भिन्न भावना को मानना छोड़कर केवल मानवता के सम्बन्ध का ही भर पालन करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हिन्दू लोग आज भी उस प्रकार से भोलेपन का व्यवहार करते हैं तो वह भर निश्चित रूप से मानवता के विरुद्ध है।

बम-गोलों से नहीं, तो मोतीचूर के लडडुओं से ?

यदि उक्त दोनों लेखांकों में दिग्दर्शित कार्यक्रम को सम्मुख रख अन्य किसी की भी प्रतीक्षा किये बिना ही प्रत्येक संगठक, सुधारवादी अपने स्वतः के कर्तव्य के रूप में इन सुधारों का नित्यप्रति के निजव्यवहार में आचरण करेगा, प्रत्यक्ष रूप में उसे करने लगेगा तो जन्मजात जातिभेद का प्रस्तुत लेख में विशद किया हुआ उच्छेदन विशेष दुर्घट नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति स्वतःपुरता तो उस जातिभेद को आज ही तोड़ सकता है। उसमें भी, प्रत्येक सुधारवादी के लिए यह तो आवश्यक है कि जन्मजात जातिभेद का आज का जीवित पैर जो रोटी-बन्धन का है, उसे तो तत्काल तथा अविरत रूप से तोड़ते रहना चाहिए। सहभोजन यही जातिभेद के पिशाच को गाड़ने वाला प्रबल मांत्रिक है। केवल शास्त्राधार के बालुकासिंचन से वह जाति-भेद मिट नहीं सकता, वैसे ही प्रत्यक्ष शस्त्रधारियों की नैर्बंधिक बाध्यता से भी उसकी मृत्यु दुर्घट तथा अनिष्टकारी भी है। जिस प्रकार उसको नष्ट करना आवश्यक है उसी प्रकार यदि उसे नष्ट करना चाहते हो, तो ऐ सुधारवादी बन्धु, आप अपने पुरता तो इस रोटी-बन्धन को तत्काल तोड़ दो। कितना सरल है यह साधन ? ब्राह्मण तथा बसोड़ एक ही पंगत में अभिन्नता से बैठ जायें और मोतीचूर के लड्डुओं को डट के खायें और देखें, तो क्या दिखाई देगा, जातिभेद तो नष्ट ही हो गया है ? जातिभेद के इस अजेय किले को ऐसा ही शाप मिला है कि सैकड़ों वर्षों तक भी यदि बम-गोलों की मार चलती रहे तो भी तुम न ढहोगे...पर अन्त में मोतीचूर के लड्डुओं की मार भर तुम्हारा चकनाचूर कर देगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिशोध का दर्शन

ऐसे अवसरों पर प्रतिशोध भी परउपकारक ही होता है।
स्वतः के हेतु न भी हो तो भी शेष रहने वाले मानव
जीवित रहें इस हेतु।

स्वातन्त्र्य वीर सावरकरजी द्वारा लिखित प्रसिद्ध नाटक 'संन्यस्त खड्ग' अर्थात् शस्त्र और शास्त्र का यह एक उद्धरण है। आत्यन्तिक अहिंसा के प्रचार से पंगु तथा प्रतिकारशून्य बने हुए शाक्य-राष्ट्र पर कोसलराज विद्युतगर्भ ने आक्रमण कर उसे धूलिधूसरित कर दिया। ऐसी अवस्था में जिन शाक्य वीरों ने आत्यन्तिक अहिंसा पाप है तथा आक्रामक अन्याय का प्रतिकार ही पुण्य है, इस आदर्श का परित्याग नहीं किया था, उनके अन्तिम जुझार सेना के सम्मुख 'शरण या रण' यह प्रश्न उपस्थित हुआ। ऐसी उस बुद्धकालीन ऐतिहासिक परिस्थिति में तात्कालिक विजय के हेतु न भी हो तो भी प्रतिशोध हेतु लड़ना यही एकमात्र कर्तव्य है इस विचार का प्रतिपादन करने वाला भाषण शाक्यों की समरसभा में उनका एक वीर सेनानी सुलोचन दे रहा है—

सुलोचन—विजय की आशा अब भले ही न रही हो, फिर भी शाक्यों के लिए एक आशा अभी भी शेष है, और वह है प्रतिशोध की। मृत्यु को टालना असम्भव है, परन्तु फिर भी एक बात भर सम्भव है और वह है—'मारते हुए मरना' आप यह सोच सकते हैं कि मेरी यह धारणा विशुद्ध क्रोध की अन्ध प्रतिक्रिया भर है। हाँ, वह वैसी ही है। पर यह दलित क्रोध की प्रतिक्रिया ही उन्मादरूपी हाथी का अंकुश होती है। सर्पपुच्छ पर पैर पड़ते ही वह सर्प त्वरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलटकर दंश करता है तथा स्वतः मृत्यु के मार्ग पर होने पर भी शत्रु को भी मरणोन्मुख बनाके छोड़ता है। विजय के हेतु नहीं, रुधिर-प्राशन के हेतु नहीं, तो प्रतिशोध के हेतु...तथा सर्प की जाति इस प्रकार प्रतिशोध लेने वाली है ऐसा भय मानवमात्र को होने के कारण ही वह उसे उस प्रकार कुचलने का साहस नहीं करता जिस प्रकार बालक चींटी या झींगुर को हंसी-खेल में कुचल देते हैं। बाण के आघात से घायल व्याघ्र भी केवल इस निराश प्रतिक्रिया के आवेश से छलांग मारकर मृगया के गले में अपने दाँत गड़ाता है। वह व्याघ्र तो मर जाता है, फिर भी उस व्याघ्र का प्रतिशोधक प्रतिक्रिया का स्वभाव देखकर कोई ऐरा-गैरा व्यक्ति व्याघ्र की मृगया हेतु ऐसे ही हँसी-खेल में नहीं चला जाता जैसे खरगोश की मृगया हेतु जाता है। वह चींटी भी क्या जीव ? जब वह मनुष्य के पैर को काटती है तब वह अच्छे से जानती है कि इस प्रकार काटने से मैं व्यक्तिशः बच नहीं सकती, पर वह बचने के लिए नहीं काटती है, अपितु इसलिए काटती है कि अपने को मारने का कुछ दण्ड तो मारने वाले को भोगना पड़े। काटने वाली वह चींटी तो मर जाती है, परन्तु उसकी उस देशक्रिया का परिणाम यह होता है कि मनुष्य तो क्या पर सर्प भी कभी उसकी जाति को काटने वाली चींटियों की बाँबी में सहसा नहीं घुसता है। मधुमक्खियों की एक ऐसी जाति होती है कि उनका छत्ता गिरते ही, वे मधु की चिन्ता छोड़ देती हैं, और अपनी जाति की अन्य मक्खियों का क्या होगा इसकी चिन्ता भी नहीं करती हैं, तो प्रत्येक मक्खी अकेली ही छत्ता गिरानेवाले का पीछा करते हुए दूर-दूर के गाँवों तक चली जाती है तथा जब वह डँसती है तब उसका डंक उस मनुष्य की देह में इतनी दृढ़ता से घुस जाता है कि वह वापस लौट ही नहीं सकता, वह वहीं मर जाती है, पर फिर भी जानबूझकर वह उस प्रकार मरने को आती है; क्योंकि, प्रतिशोध लेते हुए मरने का सन्तोष अपमानित जीवन के सन्तोष की अपेक्षा उसके लिए अधिक आनन्ददायी होता है। इसीलिए रेशम के कीड़ों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पूरी बस्ती में भी मनुष्य जितना भयभीत नहीं होता, उतना केवल एक मधुमक्खी से होता है। प्रकृति ने ही प्राणिमात्र के क्रोध के प्रतिशोध का यह जो डंक रखा है, उसमें यह दैवी उद्देश्य होता है कि प्रतिशोध की यह प्रवृत्ति आततायी आक्रमण को उसका पापी अपहरण सहसा पूर्णतः सस्ता नहीं पड़ने देती। इसी के परिणामस्वरूप ही वह आततायी कर्म करने वाला उतने निर्भय वेग से नहीं दौड़ता जितने वेग से वह प्रतिशोध के भय के न होने पर दौड़ा होता। शेष जगत् उस आततायी पीड़ा से उतने प्रमाण में अधिक सुरक्षित रहता है। इसीलिए, यदि अब शाक्य-राष्ट्र की मृत्यु अनिवार्य ही है तो 'स्वतः के जीवित रहने हेतु न भी हो तो भी कम-से-कम शेष जगत् के जीवित रहने हेतु' तो शाक्यों को विद्युतगर्भ पर व्याघ्र की भाँति टूट पड़ना चाहिए। एक-एक शाक्य को कम से कम पाँच-पाँच क्रूरकर्मी कोसलों का क्रन्दन करते हुए, उन्हें दण्ड देते हुए, उनसे प्रतिशोध लेते हुए मरना चाहिए; जिससे अन्य छोटे-छोटे प्राजकों पर तो भविष्य में सशस्त्र छापा मारने का साहस यह विद्युतगर्भ नहीं करेगा।

'ऐसे अवसरों पर प्रतिशोध केवल स्वाभाविक प्रतिक्रिया ही नहीं तो परउपकारी कर्तव्य भी है!' अतएव आपके प्रश्न के लिए मेरा एक ही उत्तर है कि 'शरण नहीं प्रतिशोध!'

081
168026

• • •

Central Library
168026
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
R 089.9143 168626
वर्ग संख्या.......GUR-H आगत संख्या...............
पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुत्व के पंच प्राण

वीर सावरकर रचित व लेख-हिन्दू राष्ट्र का एवं उक्त हिन्दू राष्ट्र को प्रस्थापित करने की दिशा का साग्र परन्तु संक्षिप्त दर्शन है।

जिस प्रकार मानव के जीवित रहते हेतु पंच प्राणों की आवश्यकता को विवाद्य नही माना जा सकता उसी प्रकार राष्ट्र-जीवन के हेतु प्रतिपादित तत्व भी विगत वर्षों के समय की अग्नि परिक्षा में प्रतप्त होकर, रसरूप होकर शोधित हो जाने के कारण किसी भी प्रकार विवाद्य नही माने जा सकते।

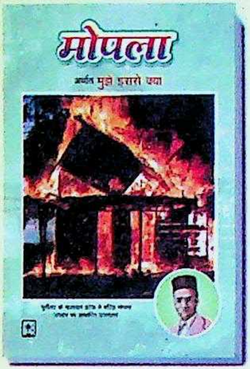

अमर सेनानी सावरकर साहित्य

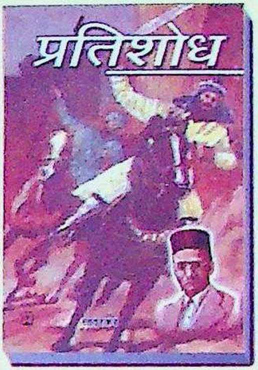

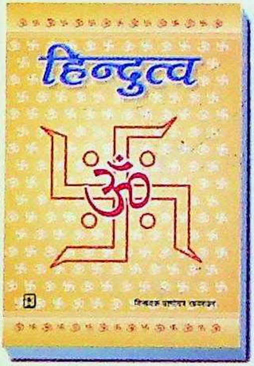

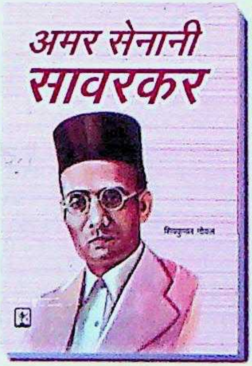

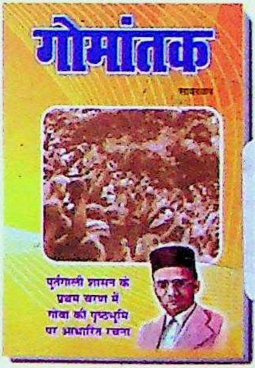

हिन्दी साहित्य सदन
www.hindisahityasadan.com
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बंधु गुप्ता रोड, करोल बाग, नई दिल्ली-110005, फोन- 9213527666, 7065618655
ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com, hindisahityasadan@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar